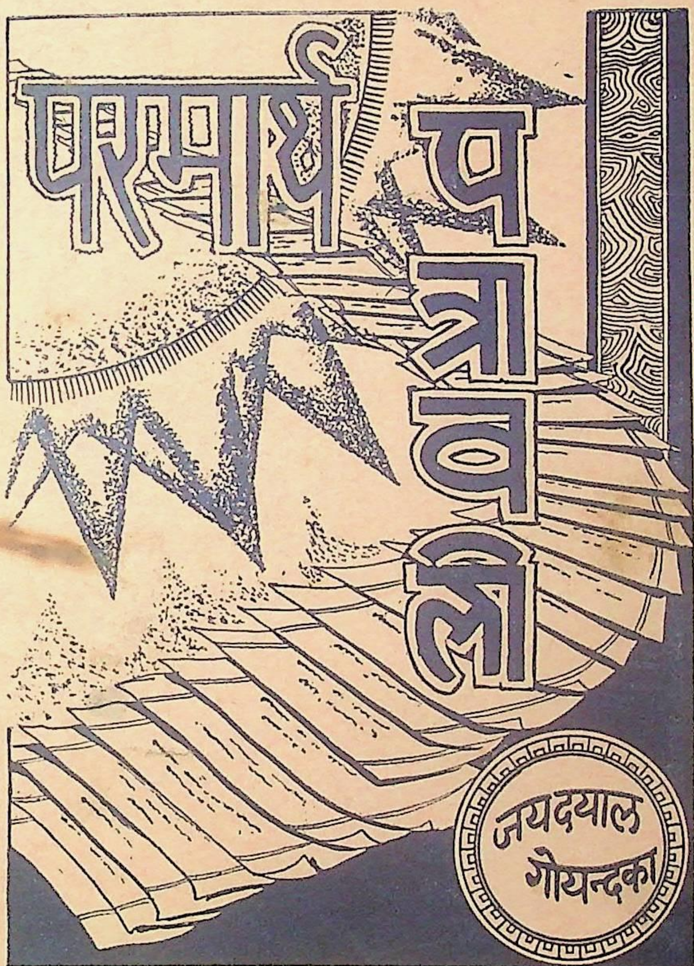
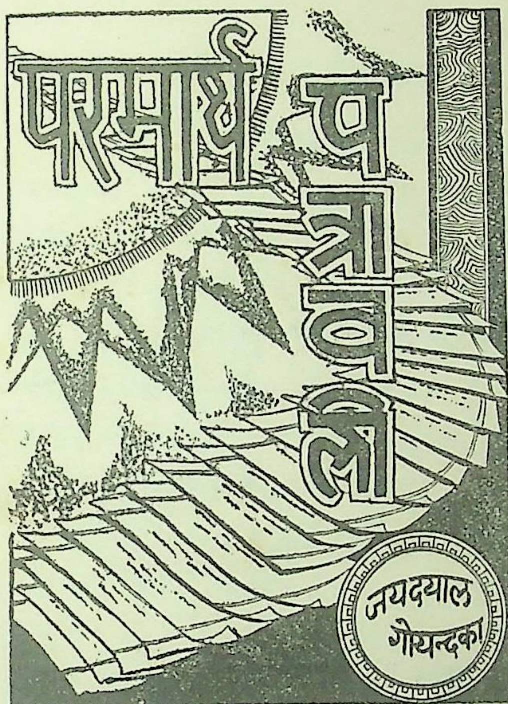


[चतुर्थ भाग]



[चतुर्थ भाग]

मुद्रक तथा प्रकाशक
घनश्यामदास जालान
गीताप्रेस, गोरखपुर

संवत् २००७ प्रथम बार १०,२५०

मूल्य ।।) आठ आना

पता—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

॥ श्रीहरिः ॥

नम्र निवेदन

प्रतिमास कई सौ पत्रोंका उत्तर दिया जाता है, उनमेंसे कितने ही पत्रोंकी नकल रख ली जाती है। कितने ही मित्रोंका आग्रह हुआ कि इन पत्रोंमेंसे बहुत-से ऐसे पत्र हैं, जो सबके लिये उपयोगी हो सकते हैं, इनको 'कल्याण'में प्रकाशित कराना चाहिये और उन प्रकाशित हुए पत्रोंको पुस्तकरूपमें भी निकालना चाहिये, क्योंकि भविष्यमें इनसे लोगोंको शिक्षा मिल सकती है। किंतु भगवान् श्रीराम, श्रीकृष्ण आदि बहुत-से अवतार और महर्षि श्रीवेदव्यास, श्रीशुकदेव, श्रीसनकादि, श्रीनारद, श्रीप्रह्लाद, श्रीतुलसीदास आदि बहुत-से महापुरुष हुए हैं, उनके लेख और व्याख्यान आदिसे संसारमें प्रत्यक्ष लाभ हुआ और हो रहा है, ऐसा होते हुए भी जो लोग मेरे लेख तथा व्याख्यानोंको पढ़ते-सुनते हैं, इसमें उनकी मुझपर विशेष दया और प्रेमके सिवा और क्या कारण हो सकता है। मेरी दृष्टिमें तो यह बात है कि मैं एक साधारण मनुष्य हूँ तथा मेरे पत्र, लेख और व्याख्यानोंके द्वारा संसारमें कोई विशेष लाभ मुझे देखनेमें नहीं आता। फिर भी मित्रोंका आग्रह देखकर इसमें रुकावट नहीं डाली गयी और पत्र, लेख प्रकाशित किये जाते तथा व्याख्यान दिये ही जाते हैं।

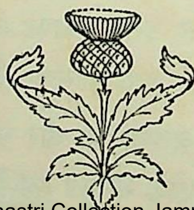
इस पत्र-संग्रहमें आध्यात्मिक और धार्मिक विषयोंके अतिरिक्त व्यापार तथा समाज-सुधारके भी कई पत्र हैं तथा कई पत्रोंमें लोगोंके

विभिन्न प्रश्नोंका उत्तर देते हुए उनकी शङ्काओंका समाधान भी किया गया है । भजन, ध्यान, सेवा, सत्सङ्ग, स्वाध्याय और संयमकी बातें भी विशेषरूपसे कही गयी हैं । दुर्गुण-दुराचारके त्याग और सद्गुण-सदाचारके सेवनपर भी जोर दिया गया है । भगवान्‌के नाम, रूप, गुण, प्रभाव, महिमा और चरित्रका तत्त्व और रहस्य भी बतलाया गया है । समयकी अमोलकता बतलाते हुए साधकोंको साधनके लिये सावधान किया गया है । जीव, ईश्वर और प्रकृतिका भेद और तत्त्व समझाया गया है एवं शरीर, संसार और भोगोंमें वैराग्य तथा उपरतिकी बातें बतलाकर आत्मज्ञानके लिये प्रेरणा की गयी है ।

इस पुस्तकमें ९१ पत्रोंका संग्रह हुआ है तथा इन पत्रोंके खास विषयको स्पष्ट बतलानेके लिये विषय-सूची भी साथ दे दी गयी है । इन पत्रोंसे जो सज्जन लाभ उठावेंगे, मैं अपनेको उनका आभारी समझूँगा ।

विनीत—

जयदयाल गोयन्दका



श्रीहरिः

विषय-सूची



ॐ

श्री॰ परमात्मनेनमः

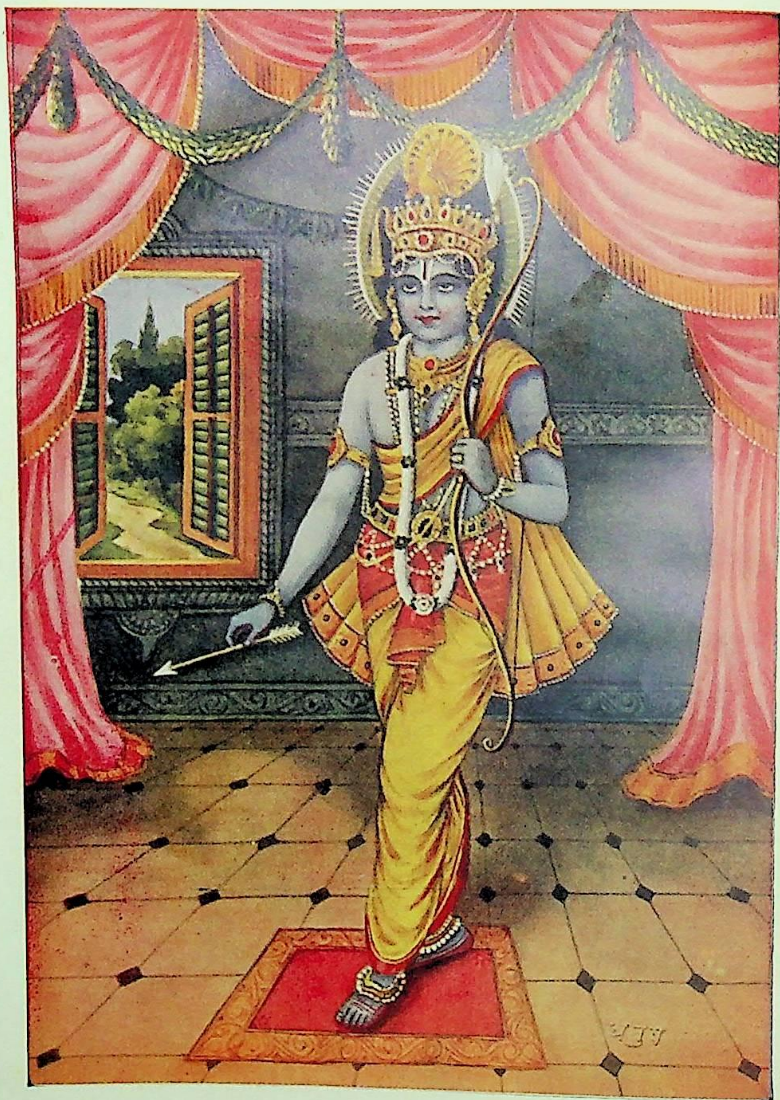
मनुष्यका मन प्रायः हर समय सांसारिक पदार्थों का चिन्तन करके अपने समयको व्यर्थ नष्ट करता है किन्तु मनुष्य जन्म का समय बड़ा ही अमूल्य है इसलिये अपने समयका एक क्षण भी व्यर्थ नष्ट न करके श्रद्धा और प्रेम पूर्वक भगवानके नाम और रूपका निष्काम भावसे नित्य, निरन्तर स्मरण करना चाहिये। इस साधन इससे बढ़कर आत्माके कल्याणके लिये दूसरा और कोई भी साधन नहीं है।

एवं दुःखी, अनाथ, आतुर तथा अन्य सम्पूर्ण प्राणियों को साक्षात् परमात्माका स्वरूप समझकर उनकी मन, तन, धन जन द्वारा मन इन्द्रियोंके संयम पूर्वक निष्कामभाव से तत्परता और उत्साहके साथ सेवा करने से भी मनुष्य का शीघ्र कल्याण हो सकता है।

अतएव मनुष्य को हर समय भगवान के नाम और रूप को याद रखते हुवे ही निष्काम भावसे शास्त्र-विहित कर्म तत्परता के साथ करने की चेष्टा करनी चाहिये।

निवेदक

कार्तिक शुक्ला १२ । २००६ – | जयदयाल गोयन्दका
मु॰ बांकुड़ा |



भगवान् राम

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

परमार्थ-पत्रावली

चतुर्थ भाग

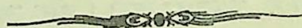
[१]

रात-दिन जपका अभ्यास करो। और ज्यादा क्या लिखूँ? बिल्कुल निष्काम हो जाओ। संसारके भोगोंको छोड़कर रात-दिन सत्सङ्ग करो। रातमें या दिनमें किसी भी समय घंटा-दो-घंटा अवकाश निकालकर पाँच आदमी एकत्र होकर सत्सङ्ग करना चाहिये।

श्री.....के वैराग्यकी बात पढ़कर बहुत आनन्द हुआ। श्रीहरिके नामका जप बहुत लगनके साथ करो। तुमको और कुछ करना है नहीं। वह स्वयं अपनी जाने, तुम तो अपने काममें सावधान रहो। निष्कामभावसे श्रीहरिके शरणागत हो जाओ, फिर कोई चिन्ता नहीं। भाईजी! तुम्हारे आनन्द न होनेका क्या कारण है? तुम्हारे तो सब बातोंका संयोग लगा हुआ है। फिर भी तुम किस कारणसे आनन्दमें मस्त नहीं होते हो? अब तुम्हें किस बातकी इच्छा रही है, इसका गम्भीरता-

से पता लगाओ। तुम किस हेतु उस हरिमें मनको अहर्निश नहीं लगा रहे हो ? किसलिये संसारकी वस्तुओंको मिथ्या देखकर भी इनसे वैराग्य नहीं करते हो ? अब संसारकी मायामें तुम किसलिये पड़े हुए हो ? अब तुम वैराग्य धारण करो। नाशवान् पुत्र-स्त्री-धनका आश्रय छोड़कर एक हरिके नामका ही आश्रय ले लो। मान-बड़ाईको त्यागकर अज्ञाननिद्रासे चेत करो। अब अज्ञानमें सोनेका समय नहीं है। तुम्हारा रास्ता अब अधिक दूर नहीं है।

भाईजी ! तुम धन्यभाग्य हो। तुम्हारे सभी बातोंकी व्यवस्था है। तुमको क्या चाहिये ? मायामें मत फँसो। यह पत्र बार-बार पढ़ना। जब प्रसन्नतामें कमी हो, उस समय अवश्य पढ़ना।



[२]

परमेश्वरके नामका जप रात-दिन हो। जिस किसी प्रकार इसे करते रहो। इससे किसी बातकी त्रुटि नहीं रहेगी। जितना स्मरण करोगे, उतना ही शीघ्र पहुँचोगे। एक पलक भी वृथा मत गँवाना। संसारको स्वप्नकी भाँति मिथ्या—आरोपित जानकर आनन्दस्वरूप परमात्माके ध्यानमें मग्न रहो। मिथ्या संसारके भोगोंमें मत फँसो। जो निष्कामभावसे ईश्वरके शरणागत हो, उसको हमारा कोटिशः नमस्कार है। आपलोग भी धन्यभाग्य हैं।

[३]

आपने मिलनेकी इच्छा लिखी सो आपके प्रेमकी बात है। मनुष्यको भगवान्‌की ही शरण लेनी चाहिये, उनकी दयासे सब कुछ हो सकता है। आपके प्रेम और भावके अनुसार मुझसे जैसी चेष्टा होनी चाहिये, वैसी नहीं होती; इसलिये मैं आपका ऋणी हूँ।

(१) मानसिक पूजा प्रातःकाल सूर्योदयके पश्चात् तथा सायंकाल भोजनके पूर्व जितनी देर श्रद्धा-प्रेम एवं शान्तिके साथ कर सकें, उतनी देर करनी चाहिये ।

(२) गुरुजनोंसे श्रद्धा-प्रेम आदिकी याचना करना कोई दोषकी बात नहीं है ।

(३) तीव्र साधन श्रद्धा-प्रेम होनेसे होता है और श्रद्धा-प्रेम सत्सङ्गसे होता है। सत्सङ्गके अभावमें सत्-शास्त्रोंका अभ्यास करना चाहिये । विवेक और वैराग्ययुक्त चित्तसे निरन्तर भगवान्‌के नामका जप एवं गुण-प्रभावसहित भगवान्‌के स्वरूपका ध्यान करना—यही तीव्र साधना है । इसे निष्कामभावसे करना चाहिये ।

(४) भजन-ध्यान आदि यदि अच्छी प्रकारसे हो तो इससे बढ़कर कोई अन्य पुरुषार्थ है ही नहीं; किन्तु कभी-कभी मन भजन-ध्यानके नामपर धोखा देकर मनुष्यको आलसी और पुरुषार्थहीन बना देता है । इसलिये भजन करते हुए ही शरीरनिर्वाहके लिये न्याययुक्त प्रयत्न करना चाहिये ।

(५) आपने अपनी सारी परिस्थिति लिखी और उसपर मेरी सलाह पूछी सो साररूपमें मेरी यही सम्मति है कि अहङ्कार, स्वार्थ, झूठ, कपट आदि दोषोंको त्यागकर

निरन्तर भगवान्‌को याद रखते हुए भगवान्‌की ही प्रसन्नताके लिये निष्कामभावसे न्याययुक्त व्यापार करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। गीताके १८ वें अध्यायके ६, २३, २६, ४६, ५६ और ५७ वें श्लोकोंपर विचार करना चाहिये।

(६) भगवद्भक्तके लिये कभी भी निराश एवं उत्साहहीन होना अपनी विशुद्ध भक्तिमें कलङ्क लगाना है।

(७) आपने लिखा कि मैं अन्धकारमें हूँ, सो भगवद्भक्तोंके सिवा सभी अन्धकारमें हैं। भगवान्‌को जाननेसे अन्धकारका नाश हो जाता है।

---

[४]

सादर सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। समाचार ज्ञात हुए। मेरे प्रति ब्रह्मनिष्ठ आदि शब्दोंका प्रयोग नहीं करना चाहिये।

यदि मनुष्य सैकड़ों वर्षोंतक माता-पिताकी निरन्तर सेवा करे तो भी उनका ऋण उतरना कठिन है। मनुस्मृतिमें कहा है—

यं मातापितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम्।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि॥
(२। २२७)

'मनुष्यकी उत्पत्तिके समय माता-पिता जो क्लेश सहते हैं, उसका बदला सौ वर्षोंमें भी नहीं चुकाया जा सकता।'

तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यादाचार्यस्य च सर्वदा।
तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते॥
(२। २२८)

'इसलिये सदा-सर्वदा उन दोनोंका एवं आचार्यका प्रिय करे। उन्हीं तीनोंके संतुष्ट होनेपर सारा तप समाप्त हो जाता है।'

तेषां त्रयाणां शुश्रूषा परमं तप उच्यते।
न तैरभ्यननुज्ञातो धर्ममन्यं समाचरेत्॥

(२। २२९)

'इन तीनोंकी सेवा ही बड़ा भारी तप कहा गया है। मनुष्य इन तीनोंकी आज्ञा बिना अन्य किसी धर्मका आचरण न करे।'

सर्वे तस्यादृता धर्मा यस्यैते त्रय आदृताः।
अनादृतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्याफलाः क्रियाः॥

(२। २३४)

'जिसने इन तीनोंका आदर किया, उसने सब धर्मोंका आदर किया और जिसने इनका आदर नहीं किया, उसकी सब क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं।'

यावत्त्रयस्ते जीवेयुस्तावन्नान्यं समाचरेत्।
तेष्वेव नित्यं शुश्रूषां कुर्यात्प्रियहिते रतः॥

(२। २३५)

'जबतक ये तीनों जीयें, तबतक दूसरा धर्म न करे। उन्हींकी प्रीति और हित चाहता हुआ नित्य उनकी ही सेवा करे।'

त्रिष्वेतेष्वितिकृत्यं हि पुरुषस्य समाप्यते।
एष धर्मः परः साक्षादुपधर्मोऽन्य उच्यते॥

(२। २३७)

'इन तीनोंकी सेवासे पुरुषका सब कर्म सफल होता है,

यही साक्षात् परम धर्म है, इसके अतिरिक्त अन्य सब उपधर्म कहे जाते हैं।'

केवलमात्र उनकी सेवासे ही मनुष्य परम पदकी प्राप्ति कर सकता है। श्रीमनुमहाराजने कहा है कि बड़प्पनकी दृष्टिसे दस उपाध्यायोंसे आचार्य और सौ आचार्योंसे पिता और हजार पिताओंसे माता अधिक है (मनुस्मृति २। १४५)। आपको अपने पिताजीकी सेवाका अवसर मिला है, इसे आप अपने-पर ईश्वरकी अत्यन्त दया समझें। लकवे-जैसी कठिन बीमारीसे लाचार हुए पिताकी सेवा तो बहुत ऊँची है। यदि किसी दूसरे साधारण दीन व्यक्तिकी भी सेवा करनेका अवसर प्राप्त हो जाय तो उसे अपना परम सौभाग्य समझना चाहिये। पिताजी कठिन-से-कठिन शब्द भी कहें तो भी आपको तनिक भी विचार नहीं करना चाहिये। आप अपने बालकपनके दिनोंको याद करें, जब कि तरह-तरहकी बातोंसे आप अपने माता-पिताको तंग किया करते थे और वे आपको अबोध शिशु समझकर कुछ भी ध्यान नहीं देते थे। जैसे आपके व्यवहारको उन्होंने उस समय प्रेमपूर्वक सहा, वैसे ही अब आपको प्रेमसे सहना चाहिये। यह आपका कर्तव्य है।

यदि आपको मेरी बातपर विश्वास हो तो यह बात निर्विवाद मान लेनी चाहिये कि केवल माता-पिताकी सेवासे मनुष्य भगवान्‌को पा सकता है। शर्त इतनी ही है कि सेवा सच्चे भावसे हो, केवल भगवत्प्रीत्यर्थ निष्कामभावसे हो और बड़ी प्रसन्नताके साथ हो। अबतक आपका कल्याण हो जाना चाहिये था; किंतु न होनेमें यही कारण मालूम पड़ता है कि आपका अपने पिताजीके प्रति दुर्भाव है; आपको उनका व्यवहार

खटकता है। आपको तो ऐसा सोचना चाहिये कि प्रभुने मुझपर बड़ी दया की है। पिताजी बहुत वर्षोंतक जीते रहें और मैं उनकी सेवा अत्यन्त प्रेमसे करता रहूँ। भगवान्‌की भक्तिके सिवा और कोई भी साधन इससे बढ़कर नहीं है, जो कि शीघ्र भगवान्‌को प्राप्त करा सके। इस कलिकालमें ज्ञान एवं योग आदिकी साधना बहुत कठिनतासे होती है।

आपका यह लिखना बहुत उत्तम है कि मुझे और किसीकी इच्छा नहीं है, केवल भगवत्प्राप्ति होनी चाहिये।

आपने लिखा कि मुझे भगवत्प्राप्तिका मौका कब मिलेगा सो आपको तो मौका मिला हुआ है। बीमार पिताकी सेवाका मौका भगवान्‌ने आपको दया करके दे दिया है। जबतक पिताजीका शरीर विद्यमान है, तभीतक इस सुन्दर मौकेसे लाभ उठा लीजिये। ऐसा मौका बराबर मिलनेको है नहीं। यह परम गोपनीय बातोंमेंसे एक बात है।

आपने मिलनेकी इच्छा दिखलायी सो आपके प्रेमकी बात है; किन्तु मिलना अन्न-जलके अधीन है। जब प्रेम है तब मिलना न भी हो तो कोई विचार नहीं करना चाहिये। शास्त्रमें कहा है कि प्रेम होनेपर दूर रहते हुए भी समीप है और प्रेम न होनेपर समीप रहते हुए भी दूर है। यह भी गोपनीय बातोंमेंसे एक बात है।

ऋषिकेश आदि स्थानोंमें जब मेरा जाना हो, तब उधर ही आपको मुझसे मिलनेमें सुविधा रहेगी।

सत्सङ्ग नहीं मिलता लिखा सो सत्सङ्गके अभावमें सत्-शास्त्रोंका अभ्यास करते रहना चाहिये। सत्-शास्त्रके दृढ़ अभ्यासससे भी सत्सङ्गके समान लाभ मिल सकता है।

गीता-सम्बन्धी प्रश्न आप मुझे लिख सकते हैं। अवकाश मिलनेपर उनका उत्तर देनेकी चेष्टा की जा सकती है।

× × ×

मैंने आपको पिछले पत्रमें गीता अध्याय १० श्लोक ९ के अनुसार जीवन बनानेकी बात लिखी थी, श्लोक ५ के अनुसार नहीं।

समय कम मिलनेके कारण मुझे पत्रोत्तर देनेमें प्रायः विलम्ब हो जाया करता है, इसके लिये चित्तमें किसी प्रकारका विचार नहीं करना चाहिये। इस पत्रका उत्तर आवश्यक समझकर शीघ्र दिया जा रहा है, भविष्यमें उत्तर जानेमें विलम्ब हो सकता है।

शरण लेनेके योग्य एक परमात्मा ही हैं। सबको उन्हींकी शरण लेनी चाहिये।

माता-पिताकी सेवाके विषयमें मनुस्मृतिके कुछ श्लोक लिखे हैं, उनपर ध्यान देना चाहिये।

मनसे भगवान्‌का ध्यान, वाणीसे उनके नामका जप एवं शरीरसे माता-पिता और दुखियोंकी सेवा—ये तीनों बातें एक साथ की जायँ तो बहुत जल्दी भगवान् मिल सकते हैं। ये तीनों एक साथ होनी कोई कठिन नहीं है।



[५]

आपका पत्र समयपर मिल गया था। मुझे उत्तर देनेमें देर हुई, इसके लिये मुझे बहुत सङ्कोच है। आप विचार न करें। आपका कलकत्ते आना नहीं हुआ, इसके लिये आपको पश्चात्ताप नहीं करना चाहिये। आपका प्रेम है तो नहीं भी आना

हुआ तो कोई बात नहीं, क्योंकि प्रेम है तो दूर रहते हुए भी निकट ही है और प्रेम नहीं है तो पास होकर भी दूर है—इस प्रकार शास्त्रोंमें लिखा है।

आपने लिखा कि मेरे लिये जँचे सो लिखना चाहिये सो ठीक है। आप जिस कार्यके लिये आये थे, उस कार्यको करना चाहिये। आपका केवल पेट पालनेके लिये ही संसारमें आना नहीं हुआ है। पेट तो पशु-पक्षी भी अपना भर ही लेते हैं। मनुष्यका जन्म बड़ा दुर्लभ है और क्षणभङ्गुर है—ऐसा जानकर इससे अपना काम तुरंत निकाल लेना चाहिये, जिससे पीछे पश्चात्ताप न करना पड़े। यह मनुष्य-जन्म बार-बार नहीं मिला करता है और इसका एक पलका भी भरोसा है नहीं। अचानक मृत्यु होनेवाली है। इसलिये मृत्युके पूर्व ही आपको जो कुछ अपने सुधार और उद्धारके लिये चेष्टा करनी हो, शीघ्र कर लेनी चाहिये।

आपने लिखा कि भजन, ध्यान निरन्तर हो, इसके लिये युक्ति लिखनी चाहिये सो ठीक है। समयको अमूल्य समझने-से, शरीरको मृत्युके मुखमें जाता देखनेसे तथा सत्सङ्ग और शास्त्रोंका अभ्यास करनेसे भजन, ध्यान तेज हो सकता है—यही उत्तम युक्ति है। पर प्रेमके बिना भजन-ध्यान निरन्तर होना कठिन है। इसलिये जबतक भगवान्‌में श्रद्धा-प्रेम कम है, तबतक विवेक-विचारके द्वारा मनको स्थिरकर भजन करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। इस प्रकार चेष्टा करनेसे भजन हो सकता है। हठसे भी हो सकता है। आलस्य, प्रमाद, भोग और आरामको हठसे त्यागकर भजन-ध्यानका साधन करना चाहिये। और कुछ भी न हो तो मालापर संख्या

गिनकर नाम-जप करना चाहिये तथा होठोंसे नामका उच्चारण करके जप करना चाहिये । एवं भगवान्‌के भक्तोंसे भगवान्‌के नाम, रूप, प्रेम, प्रभाव, तत्त्व, रहस्य, गुण, चरित्र और महिमाकी बातें सुननेकी कोशिश करनी चाहिये । वे न मिलें तो साधकोंसे सुननी चाहिये । कोई न मिले तो सद्‌ग्रन्थोंको अपने-आप स्वतन्त्र बाँचना चाहिये तथा उसपर विचार--मनन करना चाहिये और फिर काममें लाना चाहिये यानी उसके अनुसार कार्य करना चाहिये । इस प्रकार करनेसे भगवान्‌में श्रद्धा-प्रेम हो सकते हैं ।

भजन, ध्यान कम होता है लिखा सो ठीक है । अब इसके लिये प्रयत्न करनेका विचार लिखा सो आनन्दकी बात है । आपने लिखा कि आपका पत्र आनेसे साधनके लिये उत्साह होता है सो यह आपके प्रेमकी बात है ।

महापुरुषोंकी दयासे ही भगवान्‌की दया जानी जाती है लिखा सो ठीक है; किन्तु महापुरुष संसारमें बहुत कम हैं । कोई हैं भी तो उनका मिलना कठिन है । कोई मिल जाय तो पहचानना कठिन है । और ईश्वर तथा महा-पुरुषोंकी दया तो सबपर सदा ही पूर्ण है, परन्तु इस प्रकार हृदयसे कोई समझे, उसको ही इसका लाभ मिलता है । समझनेपर महान् बननेमें भी देर नहीं हो सकती ।

समय बीता जा रहा है । अब आपको चेतना चाहिये । एक भगवान्‌के सिवा अन्य कोई भी आपका है नहीं । शरीर भी आपका नहीं है । इस तरह समझकर जो समय बाकी रहा है, उसे अब श्रीभगवान्‌के अर्पण कर देना चाहिये । सदाचार, ईश्वरभक्ति, वैराग्य और सद्गुणको अमृतके समान

समझकर उनका सेवन करना चाहिये। आलस्य, प्रमाद, भोग और आरामको पापके समान समझकर उनका त्याग करना चाहिये। आप जिस कामके लिये आये थे, अब उसको बनाना चाहिये। ऐसे मौकेपर भी नहीं चेतेंगे तो फिर कब चेतेंगे और आपको कौन चेतावेगा। अब आपके ऐसा कौन-सा काम है, जिसके लिये आप अपने कर्तव्यको भूलकर समयको व्यर्थ संसारमें बिता रहे हैं। ऐसा मौका बार-बार मिलना कठिन है।

[६]

सादर सप्रेम यथायोग्य। आपका पत्र मिला। समाचार ज्ञात हुए। आपके प्रश्नोंका उत्तर संक्षेपमें नीचे दे रहा हूँ।

(१) वेदान्त-सिद्धान्तके अनुसार जब मनुष्यको ज्ञान हो जाता है, तब उसकी दृष्टिमें संसारका अत्यन्त अभाव हो जाता है। अतः इस सिद्धान्तमें जब कि संसारका ही अभाव है, तब जीवोंके कल्याणका प्रश्न कैसे बन सकता है। वहाँ न तो संसार है, न जीव; केवल ब्रह्मकी सत्ता है। परन्तु योगदर्शनका सिद्धान्त इससे भिन्न है। महर्षि पतञ्जलि कहते हैं—

'कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्यसाधारणत्वात्'

(योग० साधन० २२)

अर्थात् 'ज्ञानीके लिये नष्ट होनेपर भी अन्य साधारणके लिये संसार बना हुआ है।' इस सिद्धान्तके अनुसार जीवोंके कल्याणके विषयमें प्रश्न बन सकता है। भक्ति-सिद्धान्तके

अनुसार भी यह प्रश्न बन सकता है। वेदान्त-सिद्धान्तके अनुसार भी अज्ञानीकी दृष्टिसे यह प्रश्न बन सकता है।

अब रही जीवोंके उद्धारकी बात, इस सम्बन्धमें आपने लिखा कि क्या ऐसा भी हो सकता है कि समस्त जीव कुछ ही समयमें श्रेष्ठ भगवद्भक्तोंके प्रयत्नसे मुक्त हो जायँ। इसके उत्तरमें निवेदन है कि अबतक तो ऐसा हुआ नहीं है; क्योंकि ऐसा हुआ होता तो सभी मुक्त हो गये होते। अब आगे क्या होगा, यह बताना कठिन है। किन्तु यह बात कुछ असम्भव-सी दीखती है। फिर भी भक्तलोग सबके उद्धारकी चेष्टा करते हैं--यह देखा ही जाता है। इसपर विचार करनेसे यह अवश्य मालूम पड़ता है कि साधकके लिये सबका कल्याण हो जाय--इस प्रकारकी भावना रखना बहुत ही उत्तम है।

(२) ब्रह्माण्ड अनेक हैं—यह वर्णन शास्त्रोंमें मिलता है।

(३) ध्यानादिके द्वारा अथवा भजनके प्रभावसे शरीर दिव्य बन सकता है, किन्तु भगवान्‌का दिव्य विग्रह इससे अत्यन्त विलक्षण होता है। भजन-ध्यानादिके द्वारा जो दिव्यता होती है, उसमें और भगवान्‌की दिव्यतामें बहुत अन्तर रहता है।

एक ब्रह्माण्डसे दूसरे ब्रह्माण्डमें यथेच्छ गति नहीं प्राप्त हो सकती। एक ब्रह्माण्डसे दूसरे ब्रह्माण्डमें केवल भगवान्‌की ही गति हो सकती है। योगबलके द्वारा योगी एक लोकसे दूसरे लोकमें गमन कर सकता है, किन्तु इस तरहके योगी भी आजकल मिलने अत्यन्त कठिन हैं।

(४) ऊर्ध्वरेता बन जाना बहुत उत्तम बात है; किन्तु बनना बहुत कठिन है। इसका साधन अष्टाङ्गयोग है। आजकल अष्टाङ्गयोग जाननेवाले सच्चे अनुभवी योगीका मिलना बहुत कठिन है। इसीसे सिद्धि मिलनेमें कठिनता है।

(५) मैंने सारे वेद नहीं पढ़े हैं, इसलिये यह नहीं बतला सकता कि किस-किस वेदमें, किस-किस स्थलमें जीवोंके कल्याणके विषयमें क्या-क्या लिखा है। कुछ मन्त्रोंसे यह बात अवश्य सिद्ध होती है कि वेदोंमें जीवोंके कल्याणके लिये प्रार्थना की गयी है तथा प्रार्थना करनेके लिये दूसरोंको आदेश भी दिया गया है। यदि आप द्विज हों तो आपको वेद अवश्य पढ़ना चाहिये।

(६) उपनिषदोंमें दस उपनिषदोंकी मुख्यता अवश्य है। किन्तु यदि कोई ११२ उपनिषदोंको पढ़ सकें तो उत्तम बात है।

(७) केवल गीता पढ़नेसे ही मनुष्यका काम चल सकता है। यह एक ही पर्याप्त है। महाभारतमें बतलाया है—

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रसंग्रहैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता ॥

(महा० भीष्म० ४३ । १)

भाव यह है कि गीता पढ़ लेनेपर अर्थात् अच्छी तरह गीताका मनन कर लेनेपर दूसरे शास्त्रोंको पढ़नेकी आवश्यकता नहीं है; क्योंकि गीता तो साक्षात् भगवान्‌के मुखसे निकली है।

(८) श्रीराधिकाजी एवं रासलीलाका विषय अत्यन्त रहस्यमय है। हमलोगोंकी साधारण बुद्धिके द्वारा इसका समझमें आना

अत्यन्त कठिन है। भगवान्‌की दयासे तो मनुष्य भले ही समझ जाय, पर है यह बुद्धिकी समझसे परेकी बात। मैं यही कह सकता हूँ कि भगवान्‌की आह्लादिनी शक्ति होनेके कारण श्रीराधिकाजीको भगवान्‌का स्वरूप ही मानना चाहिये, उन्हें जीव नहीं मानना चाहिये।

(९) आपने पूछा है कि 'नैतान् विहाय कृपणान् विमुमुक्ष एकः'का क्या तात्पर्य है सो इसके द्वारा भगवान्‌के भक्तका जो उच्चतम आदर्श है, उसका प्रतिपादन हुआ है। भगवद्भक्तका अन्तःकरण विश्वप्रेमसे कितना भरा होता है, उसका नमूना भक्त प्रह्लाद सामने रख रहा है। संसारमें मोक्ष-सुखकी स्पृहा बड़े-बड़े योगी-यतियोंको भी हो जाती है, किन्तु इस सुखको भी प्रह्लाद ठुकरा देता है। वह कहता है—

प्रायेण देव मुनयः स्वविमुक्तिकामा
मौनं चरन्ति विजने न परार्थनिष्ठाः।
नैतान् विहाय कृपणान् विमुमुक्ष एको
नान्यं त्वदस्य शरणं भ्रमतोऽनुपश्ये॥
(श्रीमद्भा० ७।९।४४)

'मैं अकेले मुक्त नहीं होना चाहता। मैं अपने दीन राक्षसबन्धुओंको छोड़कर यदि मुक्त हो जाऊँ तो इनकी यत्किञ्चित् सहायता भी कौन करेगा, क्योंकि मुनिगण तो अपनी-अपनी मुक्तिकी इच्छासे एकान्त-वास और मौन-धारण करते हैं, क्योंकि उनके हृदयमें परोपकारकी इच्छा नहीं है। हे देव! यदि आपने मुझपर कृपा की है, यदि मुझे मुक्त करना चाहते हैं तो इनपर भी कृपा करें—इन्हें भी मुक्त करदें; क्योंकि

आपके सिवा इन मेरे मूढ़ राक्षसबन्धुओंको नाना योनियोंमें भ्रमण करनेसे बचानेवाला दूसरा कोई मुझे प्रतीत नहीं होता।'

यह श्लोक प्रह्लादके द्वारा की गयी श्रीनृसिंह भगवान्‌की स्तुतिमें आता है। इसका सारांश यह है कि भक्त प्रह्लाद अपने दुखी बन्धुओंको दुःखमें छोड़कर अकेला मुक्ति भी नहीं चाहता। यह है भक्तका आदर्श! मुक्तिरूप प्रसाद दूसरोंको खिलाकर स्वयं अन्तमें भोजन करना, नहीं तो भोजन ही नहीं करना। संसारको इससे शिक्षा लेनी चाहिये।

(१०) जहाँ जिस ग्रन्थमें भगवान्‌के जिस रूपकी महिमा गायी जाती है, उसीको षोडश कला-अवतार बतलाया जाता है—ऐसा ही नियम प्रायः देखनेमें आता है। श्रीरामके प्रतिपादक ग्रन्थ एवं श्रीरामभक्त भगवान् श्रीरामको षोडश कला-अवतार बतलाते हैं तथा श्रीकृष्णके प्रतिपादक ग्रन्थ एवं श्रीकृष्ण-भक्त श्रीकृष्णको षोडश कला-अवतार बतलाते हैं। श्रीमद्भागवतमें भगवान् श्रीकृष्णको प्रधानता दी गयी है और तुलसीकृत रामायणमें भगवान् श्रीरामको। वास्तवमें श्रीराम और श्रीकृष्णमें तनिक भी अन्तर नहीं है, दोनों ही पूर्णावतार हैं। मैं तो ऐसा ही मानता हूँ।

(११) श्रीहरिरूपसे अवतार लेकर की गयी भगवल्लीलाका वर्णन प्रायः पुराणोंमें मिला-जुला हुआ पाया जाता है। अर्थात् सभी पुराणोंमें सब अवतारोंकी कथा प्रायः रहती है। हाँ, जिसके नामसे पुराण होता है, उसीकी मुख्यता रहती है। जैसे, शिवपुराणमें शिवकथाकी तथा देवीभागवतमें शक्तिकी मुख्यता है। श्रीमद्भागवतमें श्रीकृष्णलीलाकी

प्रधानता है तथा रामायणमें श्रीरामलीलाका अधिक विस्तार हुआ है। श्रीविष्णुपुराणमें श्रीकृष्ण एवं श्रीविष्णु—दोनोंकी ही विस्तारसे कथा मिलती है।

पत्रके द्वारा सब बातें समझायी जानी कठिन हो जाती हैं, फिर भी चेष्टा की गयी है। आपने लिखा कि अतिवाद एवं धृष्टताके लिये क्षमा करें सो आपके पत्रमें ऐसी कोई बात ही नहीं है, फिर क्षमाका प्रश्न ही कैसे बन सकता है।



[७]

श्री..........से राम-राम। तुम्हारा पत्र मिला। समाचार जाने। तुमने लिखा कि ईश्वरका भजन नहीं बनता सो इसके लिये भगवान्‌से एकान्तमें प्रार्थना करनी चाहिये तथा सत्सङ्ग-स्वाध्याय करना चाहिये। तुमने लिखा कि 'छल-कपट, झूठ, चोरी आदि सारे पाप मुझमें हैं, आसुरी सम्पदाके सारे लक्षण मुझमें घटते हैं' सो इसके लिये भगवान्‌के नामका जप, स्वरूपका ध्यान, पूजा, स्तुति-प्रार्थना, सत्सङ्ग, स्वाध्याय, मन-इन्द्रियोंका संयम और संसारके भोगोंमें वैराग्यवृत्ति—इन उपायोंको काममें लाना चाहिये। इससे आसुरी सम्पदाका नाश हो सकता है। इनमेंसे भजन, ध्यान, सत्संग, स्वाध्याय—ये प्रधान हैं। इनकी विशेष चेष्टा करनी चाहिये।

श्री..........से दीक्षा ली हुई है, उनसे करायी हुई प्रतिज्ञाके अनुसार प्राणायाम आदि करती लिखा सो ठीक है। स्त्रीके लिये तो पति ही गुरु है। उनकी आज्ञाका पालन करना ही सर्वोत्तम है। उनका शरीर शान्त हो गया है, इसलिये

ऊपर लिखी हुई बातोंको काममें लाना चाहिये । प्राणायाम आदि भी ठीक हैं । उनसे प्रतिज्ञा की हुई है, इसलिये दस-बीस मिनट कर सकती हो । अधिक समय गीताके अध्ययन तथा भजन-ध्यान-स्वाध्यायमें लगाना चाहिये । उनके ग्रन्थ बँगलामें हैं, बँगला तुम जानती नहीं, सो ठीक है । बँगलाके ग्रन्थ पढ़नेकी आवश्यकता भी नहीं है । उनकी लिखी हुई गीताकी टीका पढ़ती हो सो बहुत ही ठीक है; इसमें कोई हानि नहीं । पर यदि वह समझमें न आये तो 'गीतातत्त्वाङ्क' तथा गीताप्रेससे छपी हुई 'गीताकी साधारण भाषाटीका' पढ़नी चाहिये ।

उनकी गीता मैंने नहीं देखी है । यदि उसमें भिन्न अर्थ है तो तुमको पढ़नेकी कोई आवश्यकता नहीं । गीताप्रेसकी गीतामें शब्दोंका अर्थ बहुत ठीक-ठीक दिया हुआ है । इसके अनुसार साधन करना चाहिये । 'गीता पढ़ो, मनन करो, उससे अपने-आप सब बातें समझमें आ जायँगी ।' उनका यह कहना बहुत ही ठीक है । गीताका अध्ययन और मनन अधिक करना चाहिये ।

ध्यानके लिये पूछा सो तुम्हें सगुणका ध्यान करना चाहिये । जिसमें श्रद्धा-रुचि हो, वही अधिक लाभकी चीज है । प्राणायाम आदि करते हुए सगुणका ध्यान करनेमें कुछ भी अड़चन नहीं है ।

तुमने पूछा कि क्या-क्या साधन करना चाहिये, किस तरह जीवन बिताना चाहिये । सो ठीक है । शौच-स्नान करके नित्यकर्म करना चाहिये । नित्यकर्ममें जितना अवकाश मिल सके, नाम-जप, ध्यान, 'श्रीप्रेमभक्तिप्रकाश'में लिखे अनुसार मानस-पूजा, स्तुति-प्रार्थना तथा गीताजीका पाठ करना चाहिये ।

सबेरे दो घंटे और सायंकाल एक घंटे—इस प्रकार तीन घंटे प्रतिदिन एकान्तमें साधन करना चाहिये। इसके सिवा शेष समय निरन्तर नाम-जप तथा भगवान्‌का ध्यान रखते हुए ही लोगोंकी सेवा आदिका काम करे। इस प्रकार जीवन बितावे।

मैं तो एक साधारण आदमी हूँ। शरण लेनेके योग्य भगवान् हैं। उन्हींकी शरण लेनी चाहिये। उनकी कृपासे सब कुछ हो सकता है।

मैंने ब्रह्मचर्यका पालन करनेकी जो बात कही थी, उसका अभिप्राय यह है कि ऐसे तो विधवा स्त्रीके ब्रह्मचर्यका पालन स्वाभाविक ही होता है; क्योंकि उसके लिये पर-पुरुष पिता-भाईके समान है। पर मनसे भी पर-पुरुषका स्मरण, एकान्तमें मिलना, दर्शन आदि कुछ न करे। शिक्षाकी या उचित बातचीत करनी हो तो पवित्रभावसे उसे पिता-भाईके समान समझकर नीचेकी ओर दृष्टि रखकर करनी चाहिये। यही ब्रह्मचर्यका पालन है। उन्होंने जो ब्रह्ममें विचरनेकी बात लिखी है, उसका अर्थ यह है कि परमात्माके नाम-रूपका मनन करना—यही ब्रह्ममें विचरण करना है।

परमात्मा महापुरुष हैं ही। उनकी प्राप्तिवाले भी महापुरुष हैं; पर उनका पता लगाना कठिन है। भगवान्‌की कृपासे ही उनका पता लग सकता है, या वे स्वयं अपना पता दें तो लग सकता है। सच्ची श्रद्धा हो, तब भी पता लग सकता है; महापुरुषको जानना क्या है—पूछा सो ठीक है। ईश्वर और महात्माको जाननेपर जाननेवाला उसी रूपको प्राप्त हो जाता है। महापुरुषको जाननेसे वह महापुरुष ही बन जाता है। गीतामें

१२ वें अध्यायके १३ वेंसे १९ वें श्लोकतक भक्तके नामसे तथा १४ वें अध्यायके २२ वेंसे २५ वें श्लोकतक गुणातीतके नामसे जो लक्षण बतलाये गये हैं, वे समस्त लक्षण महापुरुषोंमें हैं। इसलिये उनको जाननेवालोंमें भी ये लक्षण आ जाते हैं । इन लक्षणोंको लक्ष्य बनाकर साधन करना चाहिये और उन महापुरुषोंकी इच्छा, आज्ञा एवं संकेतके अनुसार चलना चाहिये—यही उनसे विशेष लाभ उठाना है।

तुमने पूछा कि चलते-फिरते पुरुष तो दीखते ही रहते हैं, फिर 'जानकर पुरुषको न देखे'–इसका क्या मतलब है; सो ठीक है। अपनी ओरसे मन चलाकर न देखे अर्थात् पुरुषको उसके रूप और यौवनके लक्ष्यसे दोष-दृष्टिपूर्वक न देखे । स्वाभाविक ही दीख जाय तो उस दोषके परिहारके लिये भगवान् सूर्यके दर्शन कर लेने चाहिये, इससे नेत्र पवित्र हो जाते हैं।

अर्पणके विषयमें पूछा सो साधारण अर्पण तो वचनमात्र-से हो जाता है; पर विशेषरूपसे अर्पण तो वह है कि भगवान्के लिये, उनके संतोषके लिये ही खाय, अपने स्वादके लिये न खाय। यथार्थ अर्पण यही है । अर्पण करनेवालेको नमकीन, कडुए, खट्टेका ज्ञान तो भले ही हो; पर उसके मनमें अनुकूलता-प्रतिकूलता, राग-द्वेष नहीं होना चाहिये।

प्रतिदिन दान क्या किया जाय पूछा सो अन्नका दान करना चाहिये। भूखा आदमी मिल जाय तो उसे, नहीं तो गाय या कुत्तेको दे देना चाहिये।

तुमने पूछा कि संसारको प्रभुमें और प्रभुको सर्वत्र किस

प्रकार देखा जाय सो ठीक है। आकाशमें बादल और बादलमें आकाशकी तरह देखे । अर्थात् जैसे आकाशके एक अंशमें बादल हैं, उसी प्रकार भगवान्‌के एक अंशमें संसार है और जैसे बादलके अणु-अणुमें आकाश व्याप्त है, उसी प्रकार सारे संसारके अणु-अणुमें भगवान् व्याप्त है । इस दृष्टान्तसे अच्छी तरह समझकर सर्वत्र भगवद्दृष्टिका साधन करना चाहिये ।

छिपकर उठायी हुई दूसरोंकी चीजें निःसंकोच उन्हें वापस कर देना ही सर्वोत्तम है। ऐसा करनेमें संकोच हो तो उन चीजोंका मूल्य प्रकारान्तरसे उन पुरुषोंकी सेवाके काममें लगा देना चाहिये, जिनकी वे चीजें ली गयी हैं । तुमने लिखा कि ऐसा काम कभी न हो, इसके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करती हूँ । भगवान् तो दयालु हैं, वे असम्भवको सम्भव कर सकते हैं; फिर उनके लिये मनको वशमें करना कौन बड़ी बात है। सो तुम्हारी यह मान्यता बहुत ठीक है।

सत्सङ्गके समय या तो निद्रा आने लगती है या मन जगह-जगह भटकता रहता है—लिखा, सो ठीक है । सुननेमें अनुराग होनेसे न तो मन ही इधर-उधर जा सकता है और न निद्रा-आलस्य ही आ सकते हैं । आध्यात्मिक बातें सुननेसे बहुत लाभ है और न सुननेसे बहुत हानि—ऐसा निश्चय करना चाहिये, जिससे सुननेमें अनुराग हो ।

'जो अपना फोटो पुजवाते हैं, वे महात्मा नहीं हैं'—मेरे इस कथनका यह आशय है कि जो सच्चे महात्मा होते हैं, वे अपना फोटो नहीं पुजवाते । महात्मा क्यों अपना फोटो पुजवायेगा ? यदि पुजवाता है तो वह महात्मा कहाँ ? यदि पूजनेवाला

महात्माकी सम्मतिके विना पूजता है तो यहाँतक तो उसका कोई दोष नहीं है; पर महात्माके विरोध कर देनेपर भी पूजे तो उसकी भूल है।

गुलेन-तार लगाने तथा सिलाई करनेके लिये पूछा सो ठीक है। गुलेन-तार लगाना आदि श्रृङ्गारका काम तो नहीं करना चाहिये। इसके सिवा दूसरोंको आराम पहुँचानेके सभी काम करने चाहिये। श्रृङ्गारकी चीजोंका काम न करनेसे घरवाले अप्रसन्न हों तो उन्हें मेरा नाम लेकर नम्रतासे कह देना चाहिये कि उन्होंने कहा है—श्रृङ्गारके काममें विधवा स्त्रीको सम्मिलित नहीं होना चाहिये, क्योंकि इससे वृत्तियाँ खराब होती हैं। ऐसा कह देनेसे, सम्भव है, उन्हें दुःख नहीं होगा।

घरमें बच्चे चमड़ेके जूते चौकेमें भी ले जाते हैं, यह बहुत खराब है। चमड़ा घरमें किसी हालतमें भी न आये, तभी ठीक है। इसके लिये तुम्हारे ससुरको कहनेका विचार है। और तुम भी घरवालोंको विनयपूर्वक प्रार्थनाके रूपमें कहो तो कोई दोष नहीं है। कोई लड़का चौकेमें जूता ले जाय, उस समयके लिये यदि तुम उस रसोईको अपवित्र समझकर उपवास कर लो तो इसका अच्छा असर हो सकता है और फिर अपने-आप प्रवन्ध हो सकता है। ऐसा उपवास करना न्याययुक्त है। यदि घरवाले पूछें कि क्यों नहीं भोजन किया तो कहना चाहिये कि रसोई अपवित्र हो गयी है, इसे खानेमें मुझे घृणा होती है, इसलिये भोजन नहीं किया, दूसरे समय कर लूँगी।······

दिनचर्या बतलानेको लिखा सो वर्तमानमें जो दिनचर्या है, वह मालूम होनेपर उसमें जो सुधार करनेकी बात हो सो बतलायी जा सकती है।

संसारसे वैराग्य होकर भगवान्‌में प्रेम होनेका तथा पापों-के नष्ट होनेका उपाय पूछा सो निरन्तर भगवान्‌के नामका जप, उनके स्वरूपका ध्यान और सत्सङ्ग-स्वाध्यायकी चेष्टा करनी चाहिये। इससे स्वतः ही संसारसे वैराग्य होकर भगवान्‌में प्रेम हो सकता है। पापोंके नाशके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये। भगवान्‌की कृपासे सब पाप नष्ट हो सकते हैं। आसुरी सम्पदाकी, अवगुणोंकी बात लिखी सो ठीक है; उनके नाशके लिये भगवत्प्रार्थना तथा भगवान्‌के नामका जप करना चाहिये। इससे तुरंत उनका नाश हो सकता है।

जबहिं नाम हिरदै धरयो भयो पापको नास।
मानों चिनगी आगकी परी पुराने घास॥

भगवान्‌के नाम-जपसे ज्ञात-अज्ञात—सब पाप नष्ट हो जाते हैं। जो पाप जानकारीमें बनते हैं, उनको छोड़नेकी चेष्टा करनी चाहिये, जिससे भविष्यमें पाप न बनें।

तुमने लिखा कि स्वप्नमें मुझे अपने पतिके दर्शन हुए हैं और लिखा कि 'उनके पैर जमीनसे करीब एक बित्ता ऊपर थे, कानके पास सिरमें पाँच-सात दाग थे, पूछनेपर कहा कि मैं भगवान्‌के धाम-में रहता हूँ, वहाँ सब चतुर्भुजरूपमें रहते हैं। भगवान्‌के द्वारा सत्सङ्ग-वार्ता सुनते रहते हैं। तुम चतुर्भुजरूपको अभी नहीं देख सकोगी, इसलिये वायुके शरीरसे आया हूँ और ये दाग दग्धके हैं।' सो यह बहुत ही बढ़िया स्वप्न है। स्वप्नमें जो-जो दृश्य दिखलायी दिये वे सभी बहुत अच्छे हैं। उन्होंने धाममें जानेकी, वहाँ चतुर्भुजरूपमें रहने आदिकी जो बातें बतलायीं, वे सब युक्तिसंगत

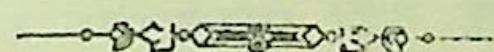
और शास्त्रसंगत हैं। उनके धाममें जानेकी बात बहुत सन्तोषकी है, केवल सिरके दागोंकी युक्तिसे संगति नहीं लगी।

सत्सङ्गकी बातें काममें आतीं नहीं, इसके लिये तीव्र इच्छा करनी चाहिये। तीव्र इच्छा ही इसका उपाय है।

तुमने लिखा कि क्या करूँ, जिससे नया जीवन हो जाय; सो भगवान्‌की शरण होकर करुणभावसे उनसे प्रार्थना करनी चाहिये। उनकी कृपासे सब कुछ हो सकता है।

मान-बड़ाईको विषके समान तथा अपमान-निन्दाको अमृत-के समान समझनेसे मान-बड़ाईकी चाह कम हो सकती है।

तुमने जो पत्र ऋषिकेश दिया था, उसका उत्तर, ऐसा याद आता है कि तुम्हारे ससुरके पतेसे दिया गया था। या तो वह पत्र पहुँचा नहीं होगा, अथवा तुम्हारे ससुरने पहुँचाया नहीं होगा। वह पत्र उत्तर देनेके बाद नष्ट कर दिया गया। तुम्हारे पास उसकी नकल हो तो भेज सकती हो, फिर उत्तर दिया जा सकता है। नकल हो और उस पत्रकी कोई बात पूछनी शेष रह गयी हो तो फिर याद करके पूछ लेनी चाहिये। इसमें संकोच नहीं करना चाहिये।



[८]

सादर सप्रेम राम-राम। × × × ×। भजन-ध्यानके लिये विशेष चेष्टा होनी चाहिये। कालका भरोसा नहीं करना चाहिये। जिस कार्यके लिये इस संसारमें मनुष्य-जीवन मिला था, यदि वह पूरा नहीं हुआ तो समझना चाहिये कि जीवन व्यर्थ ही

बीत गया। मनुष्य-जीवन भगवत्प्राप्तिके लिये ही भगवान् दया करके देते हैं। जो मनुष्य इसे भोग भोगनेमें ही बिताता है, वह अमृतका त्याग करके जहर पीता है। संसारमें भगवान् एवं उनके भक्तोंके सिवा और कोई भी अपना नहीं है। अन्तमें पुत्र, स्त्री, तन, धन, सुहृद्, परिवार—सभी नाता तोड़ लेंगे। अतः अभीसे इनसे प्रेम हटाकर भगवान्में प्रेम करना चाहिये। भगवान्से बढ़कर कोई प्रेमी नहीं है। जो अपना सर्वस्व भगवान्को दे देता है, उसे भगवान् अपना सब कुछ दे डालते हैं। ऐसे प्रेमीसे यदि मिलन न हुआ तो फिर पशु और मनुष्यमें अन्तर ही क्या है। इसलिये सांसारिक काम करते हुए भी मन भगवान्में रहे, इस बातका अधिक ध्यान रखना चाहिये।

नीचेके समाचार········को सुना देने चाहिये।······से राम-राम। ××××। संसारमें मनके अनुकूल बातोंमें सभीको प्रसन्नता होती है, यह एक साधारण नियम-सा है; अतः भगवान् अपने मनके अनुकूल सब कुछ करते रहें तो उसमें प्रसन्न रहना कोई बड़ी बात नहीं है। भगवान्में श्रद्धा-प्रेम तो तब समझा जाय, जब कि भगवान् निरन्तर मनके प्रतिकूल काम करते रहें और भक्त बड़ी प्रसन्नतासे उन विधानोंका श्रद्धापूर्वक सत्कार करे। अर्थात् चाहे मनके कितनी ही प्रतिकूल बात क्यों न हो, भगवान्की यही इच्छा है—ऐसा समझकर निरन्तर प्रसन्न होता रहे। अपने कल्याणकी आवश्यकता भगवान्को नहीं है, सांसारिक मनुष्योंको है। अतः इस नाते भी उनकी प्रसन्नतामें अपनी प्रसन्नता रखनी चाहिये। जो कुछ भी काम अपनी इच्छाके विरुद्ध आ प्राप्त हो, उसमें घबराना नहीं चाहिये, बल्कि उसमें

भगवान्‌का हाथ समझकर प्रसन्न होना चाहिये; क्योंकि प्रभु जो कुछ करते हैं, भलेके लिये ही करते हैं।

तुमने लिखा कि मेरा केवल गोपियोंकी तरह भगवान्‌में प्रेम हो जाय, एक बार वे मुझे दर्शन दे दें, फिर चाहे मुझे विरह-में ही रक्खें--सो ठीक है। जैसे गोपियाँ निरन्तर भगवान्‌के ही गुण गाया करती थीं, वैसे ही भगवान्‌के नाम-गुणोंको गाते हुए निरन्तर छटपटाते रहनेपर भगवान्‌की दयासे ऐसा प्रेम प्राप्त हो सकता है। एकान्तमें बैठकर प्रभुसे प्रेमके लिये प्रार्थना करनी चाहिये।

---

[९]

तुम्हारी मेरे पास आकर मुझसे मिलनेकी इच्छा थी, पर आना नहीं हो सका—इसके लिये मनमें कोई विचार नहीं करना चाहिये; क्योंकि यह अन्न-जल—प्रारब्धके अधीन है। तुमने इसके लिये प्रेमकी कमी बतलायी सो ठीक है। तुम्हारा जितना प्रेम है, मैं तो उसके अनुसार भी बदलेमें प्रत्युपकार कर नहीं पाता। और मुझमें तो तुम्हारा प्रेम है ही, श्रीभगवान्‌में मुझसे भी अत्यधिक प्रेम करना चाहिये।

तुम्हारा साधन बहुत तेज--सन्तोषजनक होना चाहिये। इसमें तुम्हारी चेष्टा विशेष काम दे सकती है। श्रद्धा-प्रेम कम हो तो हठसे साधना करनी चाहिये, फिर आगे चलकर प्रेम हो सकता है। समयको अमूल्य और शरीरको क्षणभङ्गुर समझनेसे, सत्सङ्ग करने तथा पुस्तक-पत्र आदि बाँचनेसे साधन तेज हो सकता है एवं विवेक और वैराग्यपूर्वक विचारकर

प्रयत्न करनेसे—अभ्यास करनेसे भी साधन तेज हो सकता है। अन्य कुछ भी न हो तो श्री·········की तरह हठपूर्वक भगवान्‌के नामका जप करनेसे भी साधन तेज हो सकता है।

---

[१०]

भगवान्‌में मन लगनेके लिये कड़ी बात लिखनेको लिखा सो ठीक है। समय बीता जा रहा है। एक भगवान्‌के सिवा तुम्हारा और कोई भी नहीं है। स्त्री और रुपयोंकी तो बात ही क्या, तुम्हारा शरीर भी तुम्हारा साथी नहीं है। कोई भी पदार्थ साथ जानेवाला नहीं और शरीरका एक पलका भी भरोसा नहीं। इसलिये जबतक शरीरमें प्राण है, तभीतक जो कुछ अपना सुधार या उद्धार करना हो, बहुत जल्दी कर लेना चाहिये, जिससे पीछे पश्चात्ताप न करना पड़े।

१. शरीरकी राख होनेवाली है, जो यों ही उड़ती फिरेगी। हड्डियाँ भी ठुकराती फिरेंगी।
२. रुपयोंकी न मालूम क्या दशा होगी?
३. स्त्री तो तुम्हारी बीमार है ही। अभी मृत्युके निकट चली गयी है। एक बार कुछ ठीक हुई थी, आगेका कुछ भी भरोसा नहीं।

इसलिये इन सारी चीजोंसे अपना काम निकालना चाहिये। जिससे तुम्हारा सुधार हो और भगवान्‌में प्रेम हो, उसीमें शरीर और रुपयोंको लगाना चाहिये।

श्रीभगवान्‌के नाम, रूप, गुण, प्रभाव, श्रद्धा, प्रेम, तत्त्व, रहस्य और लीलाकी बातें भगवान्‌के भक्तोंसे सुननी तथा

शास्त्रोंमें पढ़नी चाहिये और एकान्तमें इस विषयका मनन यानी विचार करना चाहिये । फिर उसके अनुसार काम करना चाहिये । इस तरह करनेसे भगवान्में श्रद्धा-प्रेम हो सकता है, फिर भगवान्का निरन्तर भजन हो सकता है । और कुछ भी नहीं हो तो भगवान्को हठसे ही हर समय याद रखना चाहिये । श्रीभगवान्के शरण होकर साधन करनेसे भगवद्दया-से साधन तेज हो सकता है । शरीरको किराया चुकायी हुई मोटरके समान समझकर इससे आराम, भोग, आलस्य और पापको त्यागकर बलपूर्वक भजन, ध्यान, सेवा, सत्सङ्ग करने-का काम लेना चाहिये । और कुछ न हो तो भगवान्को एक पलके लिये भी भूलना तो नहीं चाहिये, हठसे ही स्मरण करना चाहिये ।



[११]

सादर सप्रेम यथायोग्य । × × × ×

आपने·····के विषयमें एवं उनके गुमाश्तोंके बर्तावके विषयमें समाचार लिखे सो मालूम किये । यदि कोई आदमी पाप करता हो और उसे अच्छी सलाह बुरी लगती हो तो ऐसे स्थलपर मौन ही रहना चाहिये । स्वयं सब प्रकारके पापोंसे बचना चाहिये तथा किसीकी निन्दा-चुगली नहीं करनी चाहिये ।

आपने लिखा कि रुपयोंके बिना संसारका काम नहीं चलता, सो ऐसी बात नहीं है । एक बात सदा स्मरण रखनेकी है कि यदि रुपयोंके बिना काम चलता न दीखे, तब भी रुपया

चाहे न पैदा हो और भले ही चने चबाकर जीवन-निर्वाह करना पड़े, किन्तु पापसे रुपया कभी नहीं कमाना चाहिये। अधिक-से-अधिक अन्नका कष्ट होकर मनुष्यके प्राण जा सकते हैं; किन्तु यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि धर्मका पालन करते हुए मरनेमें भी कल्याण है। (गीता ३ । ३५) × × ×

इस कलिकालमें सारा संसार झूठ-कपटसे रहित हो जाय, यह बहुत ही कठिन है। हाँ, जो व्यक्तिगतरूपसे अपना सुधार करना चाहे, उसका सुधार हो सकता है। इसी कारण कलिकालकी यह विशेषता है कि मनुष्य बहुत थोड़े परिश्रमसे ही अपना कल्याण कर सकता है।

आपने लिखा कि·········के साथ परस्पर द्वेष नहीं है, सो बहुत उत्तम बात है। × × × ×···के साथ आपका ऐसा व्यवहार होना चाहिये कि जिससे···के चित्तमें विकार न हो। घरके किसी भी प्राणीसे घृणा नहीं करनी चाहिये, बल्कि प्रेमसे उनका पालन-पोषण करना चाहिये। रोजगारके लिये आपको घर छोड़कर बाहर नहीं जाना चाहिये। भजन-ध्यानके लिये भी घर छोड़नेकी आवश्यकता नहीं है। घर बैठे ही भजन हो सकता है। यदि आपकी बात कोई न सुनता हो तो आप इसकी चिन्ता न करें। आप भगवान्‌की बात सुनिये, फिर भगवान् आपकी सुनेंगे। उनके प्रसन्न होनेपर किसी दूसरेकी प्रसन्नताकी आवश्यकता नहीं है।

× × × ×·········में जो मान-प्रतिष्ठाके भाव हैं, उनके नाशके लिये मुझे उपाय करनेको लिखा सो इसका उपाय तो भगवान् ही कर सकते हैं, मुझमें इतनी सामर्थ्य नहीं है। हाँ, इतना अवश्य कह सकता हूँ कि भजन-ध्यान करनेसे

ईश्वरकी कृपासे समस्त दोषोंका नाश हो सकता है। मेरी प्रार्थना की हुई बातोंको काममें लानेपर लाभ हो सकता है। काममें ही न लाया जाय तो उसका क्या उपाय। दवा सेवन किये बिना बीमारी कैसे मिट सकती है और दवा सेवन करना रोगीका काम है, वैद्य तो बेचारा केवल औषध दे सकता है।

आपने लिखा कि मेरा·········से कोई स्वार्थका सम्बन्ध नहीं है, केवल दयाका सम्बन्ध है; सो ऐसा ही होना चाहिये।

भगवान्‌के भक्तोंमें और भगवान्‌में कोई भेद नहीं है, किन्तु ऐसे भक्त मिलने कठिन हैं। यदि मिल भी जायँ तो उन्हें पहचानना और भी कठिन है। ऐसे भक्तोंको मेरा नमस्कार है।

आपने लिखा कि मैं आपको अच्छी तरह जान गया हूँ; सो जाननेयोग्य परमात्मा हैं, उन्हींको जानना चाहिये। मैं तो एक साधारण मनुष्य हूँ। मुझे 'आप नारायण हो', 'निर्गुण परमेश्वर हो', 'निष्कलङ्क हो', 'भगवान् हो'—इस तरह कभी नहीं लिखना चाहिये। ऐसा लिखना मेरा अपमान करना है।

मैं प्रायः आपको मना करता हूँ और अब फिर भी लिख रहा हूँ कि आप मेरे लिये प्रशंसासूचक शब्दोंका प्रयोग न किया करें। किन्तु आपने मेरी प्रार्थनापर ध्यान नहीं दिया और उल्टे मुझे ही लिखते हैं कि आप ऐसा मत लिखा कीजिये। यदि आप थोड़ा विचार करें तो आपके मनका भ्रम दूर हो जाय। यदि आप वास्तवमें मुझे महात्मा मानते होते और मैं महात्मा होता तो आपमें रत्तीभर भी पाप नहीं रहना

चाहिये । यह असम्भव बात है कि कोई किसीको महात्मा माने और महात्मा माननेपर महात्माके गुण उसमें न आयें । यदि कोई किसीको सच्चे भावसे महात्मा मानता है तो उसके माननेकी यही पहचान है कि वह स्वयं भी उसी महात्माके समान बननेकी चेष्टा करता है, सब तरहसे उस महात्माका अनुगामी बननेके लिये प्राण लगाकर भी प्रयत्न करता है। संक्षेपमें अपनी जाँचके लिये यह कसौटी है । इसपर यदि आप विचार करेंगे तो आपको पता लग सकता है कि वास्तवमें आप मेरे प्रति जैसे शब्दोंका प्रयोग करते हैं, वैसा मानते नहीं । इसलिये भी मेरा मना करना ठीक ही है तथा 'शरण लेने योग्य, प्रशंसाके योग्य केवल परमात्मा ही हैं'—मेरा यह लिखना भी उचित ही है; क्योंकि मनुष्यका कल्याण भगवान् ही कर सकते हैं ।

एक बात और भी ध्यानमें रखनी चाहिये कि असलमें तो सच्चे महात्मा बहुत कम हैं, अतः उनका दर्शन कठिन है। यदि दर्शन हो जाय तो उनमें श्रद्धा होनी कठिन है। मनुष्य भ्रमसे ही अपनी श्रद्धा मान लेता है। श्रद्धा-प्रेमका हृदयसे सम्बन्ध है। दिखावटी श्रद्धाका कोई मूल्य नहीं है।

जीवन बड़ा मूल्यवान् है, इसे याद रखना चाहिये । यह संसारके भोग भोगनेके लिये नहीं मिला है। विषय-सुख तो एक कुत्तेको भी प्राप्त है । अतः इस अनात्म जगत्से मन हटाकर सच्चिदानन्दघन परमात्मामें मन लगाना चाहिये । सच्चिदानन्दघन परमात्मामें स्थित होकर इस संसारको एकदम भूल जाना चाहिये । यह जगत् तीन कालमें भी नहीं है, एक परमात्मा ही है—ऐसा निश्चय बार-बार करना चाहिये ।

एकान्तमें बैठकर इसका दृढ़ अभ्यास करना चाहिये। तथा व्यवहारकालमें भी जगत्से मेरा कुछ भी सम्बन्ध नहीं है, गुण ही गुणोंमें बर्त रहे हैं—ऐसा मानते हुए ही व्यवहार करना चाहिये एवं सर्वत्र सब समय एक परमात्माका ध्यान रखना चाहिये।



[१२]

………के विषयमें समाचार मालूम किये। उन्हें आपके पास छिपकर आनेकी आवश्यकता नहीं है। उनसे कह दीजिये कि मेरी समझमें उन्हें सत्सङ्ग अवश्य करना चाहिये। हाँ, भजन-ध्यान जितना छिपाकर किया जा सके, उतना ही उत्तम है।

यदि भजन-ध्यानके सम्बन्धमें उनके पिताजी उनसे कुछ पूछें तो उन्हें सरलतासे, बड़ी नम्रतापूर्वक यह कह देना चाहिये कि 'पिताजी! भजन-सत्सङ्गके सिवा आप दूसरे जिस विषयमें जैसी आज्ञा देंगे, वैसा करनेकी चेष्टा करनेका विचार है। मैं आपका पुत्र हूँ, पुत्रकी बहुत-सी बातें पिता सुनते हैं। यदि आप सत्सङ्ग करना अनुचित भी समझते हों, तो भी मेरी इच्छा होनेके कारण आप दया करके मुझे इसके लिये आज्ञा दे दें।'

यदि उनके पिताजी प्रार्थना करनेपर भी न मानें तो उनके सब प्रकारके वचनोंको धैर्यके साथ शान्तिपूर्वक सुनते रहना चाहिये, किन्तु सत्सङ्ग करना न छोड़ें।…

गोविन्दभवनके विषयमें जो कुछ कहें, बुरी-से-बुरी गालियाँ दें, तब भी उन्हें शान्तिपूर्वक सुन लेना चाहिये। अभिप्राय यह है कि सत्सङ्ग और भजन छोड़नेके सिवा वे जिस प्रकार प्रसन्न हों, वैसे ही करनेकी चेष्टा उन्हें करनी चाहिये। उनके लिये सबसे उत्तम बात यही है कि सेवा और विनयके द्वारा घरवालोंको प्रसन्न रखते हुए ही प्रकट अथवा गुप्तरूपसे सत्सङ्ग करते रहें।

घरवालोंको प्रसन्न रखना चाहिये। उनकी सेवा करनी चाहिये। भगवान्‌का भजन उनको अच्छा न लगे तो गुप्तरूपसे करना चाहिये। सत्सङ्ग करनेके लिये पूछा सो ठीक है, हमारे सङ्गके लिये हम कैसे कहें कि घरवालोंको अप्रसन्न करके आ जायँ और हमारा सङ्ग करें। भजनके लिये तो कह सकते हैं कि घरवालोंके कहनेसे भजन न छोड़ें।

१. भजन तो छोड़े ही नहीं, बल्कि उन्हें प्रसन्न रखकर करे।
२. भजन गुप्त रखकर करे, उनको मालूम ही न होने दे।
३. अप्रसन्न भी हों तो उनकी बात न सुनकर भजन करे।

---

[१३]

आपका पत्र मिला। समाचार ज्ञात हुए। यह जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि आप गीता-प्रचारके लिये चेष्टा कर रहे हैं। आप जितना प्रयत्न कर सकें, अधिक तत्परतासे करें। गीता-प्रचारक केवल सिद्ध महात्मा ही हो, ऐसी बात नहीं है; साधक भी प्रचार कर सकता है। गीताप्रचारके फलस्वरूप साधकको भगवत्प्राप्ति होती है—यह बात स्वयं

श्रीभगवान्‌ने गीतामें कही है (गीता १८ । ६८-६९) । अतः भगवान्‌का आश्रय लेकर इस कामको करते रहना चाहिये। भगवान्‌की दयासे मनुष्यको अपने-आप योग्यता प्राप्त हो सकती है ।

आपने पूछा कि गीताका प्रचार कैसे करना चाहिये, सो जिस प्रकार श्रीस्वामीजी महाराज कर रहे हैं, उसी प्रकार आपको भी करना चाहिये । गीताका अभ्यास करनेवाले कई भाई एक जगह बैठकर 'किसको कितना अभ्यास हुआ' इस विषयमें प्रतिदिन पूछताछ कर लिया करें तो बहुत ठीक है ।

आपने आशीर्वाद देनेके लिये लिखा सो आशीर्वाद देनेकी योग्यता तो परमात्मामें ही है । मैं न तो आशीर्वाद देनेके योग्य हूँ और न अपना अधिकार ही समझता हूँ । हाँ, इतना अवश्य कह सकता हूँ कि आपके गीता-प्रचारके कामसे मैं बहुत प्रसन्न हूँ ।



[१४]

यह स्मरण रखना चाहिये कि दरिद्रताका सम्बन्ध प्रारब्धसे है । दरिद्रता प्रारब्धका फलभोग है । भजनसे इसका तनिक भी सम्बन्ध नहीं है । यह तो आपके मनका ही भ्रम है कि दरिद्रताके कारण भजन नहीं होता । भजन तो प्रेम होनेसे होता है । प्रेमकी कमी ही भजनके न होनेमें हेतु है । जिस दरिद्रताको आप बाधक समझते हैं, वह तो भजनको बढ़ानेवाली चीज है । आजतक जितने ऊँचे-ऊँचे भक्त हुए हैं,

उनमें प्रायः अधिकांश दरिद्र हुए हैं। यह स्वाभाविक बात है कि दुःखमें भगवान् अधिक याद आते हैं। इसीलिये कुन्ती-देवीने तो भगवान्‌से यह वरदान माँगा था कि प्रभो ! मैं निरन्तर विपत्तिमें रहूँ, जिससे आप मुझे सदा याद आते रहें।

[१५]

(१) पूर्वजन्मके कुसंस्कार एवं इस जन्ममें कुसङ्ग–यही दोनों मनुष्यके सर्वनाशके हेतु बनते हैं अर्थात् मनुष्यका पतन कराते हैं। हाँ, सुख-दुःखकी प्राप्ति मनुष्यको प्रारब्धकर्मके अनुसार होती है।

(२) पूर्वजन्मके अथवा इस जन्मके सभी तरहके पाप परमात्माके भजन-ध्यानसे छूट सकते हैं।

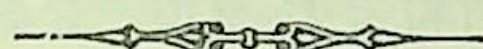
(३) यदि मनुष्यके ऊपर ऋण हो और वह चुकानेमें सब प्रकार असमर्थ हो तो परमात्माके भजनसे वह उऋण हो सकता है।

[१६]

रोजगार कम लिखा सो ठीक है; दो पैसे पैदा हों--ऐसी न्यायपूर्वक चेष्टा करनी चाहिये। मिथ्या रोजगार कम हो तो कोई बात नहीं। सच्चा रोजगार अवश्य करना चाहिये। भगवान्‌का भजन-ध्यान करना, सत्सङ्ग करना, धार्मिक ग्रन्थोंका स्वाध्याय करना और सेवा करना ही सच्चा रोजगार है।

आपने लिखा—मेरे लायक कोई काम लिखना चाहिये, सो ठीक है। आप जिस कामके लिये यहाँ आये हैं, उस कामको

करना चाहिये। ऐसा अवसर पाकर असावधान नहीं रहना चाहिये। समय तो बीता जा रहा है। अभी न चेतेंगे तो पीछे पछताना पड़ेगा। अतः शीघ्र ही मनुष्य-जन्मको सफल बना लेना चाहिये। अब अत्यन्त जोरसे साधन करना चाहिये। जितना समय बचा है, उस सबको भगवान्‌के अर्पण कर देना चाहिये। आप-को तो अब केवल श्रीभगवान्‌की ही शरण लेनी चाहिये। अब आपको किस बातकी आवश्यकता है ?



[१७]

आपने लिखा कि यहाँ सत्सङ्गका अत्यन्त अभाव है, सो ठीक है। जहाँ सत्सङ्ग न मिले, वहाँ गीताप्रेसकी पुस्तकोंका बार-बार स्वाध्याय करना चाहिये। यह सत्सङ्गके समान ही लाभ दे सकता है। एक बात स्मरण रखनेकी है कि सत्सङ्गका पूरा-पूरा लाभ श्रद्धा होनेसे ही होता है। बिना श्रद्धाके किये हुए सत्सङ्ग-की अपेक्षा अच्छे पुरुषोंकी लिखी हुई पुस्तकें तथा पत्र आदिसे अधिक लाभ होता है–यह निश्चित बात है। क्योंकि पासमें रहनेपर तो उनकी क्रियापर दृष्टि चली जाती है और पुस्तकोंमें उनकी क्रिया तो सामने रहती नहीं, बल्कि उनमें उनकी महत्ता-की ही बातें सामने रहती हैं।

मनुष्यको निरन्तर याद रखना चाहिये कि जिस कामके लिये इस संसारमें आना हुआ है, उसे जल्दी-से-जल्दी पूरा कर लिया जाय। मनुष्य-जीवनका एकमात्र लक्ष्य है–भगवत्प्राप्ति। जिस कामसे इस लक्ष्यमें बाधा पहुँचे, उसे तत्काल ही त्याग देना चाहिये। भगवान् एवं महापुरुषोंकी सब जीवोंपर समान भावसे

अपार दया है, किन्तु श्रद्धाकी कमीके कारण उससे वञ्चित रहकर मनुष्य स्वयं ही दुःख उठा रहा है। जो जितनी मात्रामें श्रद्धा रखता है, उसे उतनी मात्रामें शान्ति और आनन्द भी अवश्य प्राप्त होते हैं। यदि भगवान् और उनके भक्तोंकी इस महान् दयापर पूर्ण विश्वास हो जाय तो फिर विलम्बका काम ही नहीं है, तत्क्षण ही भगवत्प्राप्ति हो जाय। जो लोग भगवान् एवं उनके भक्तोंसे दया करनेके लिये प्रार्थना करते हैं, वे भोले आदमी हैं; क्योंकि उनकी दया तो पहलेसे ही है। तथापि दयाके लिये याचना करना कोई दोष नहीं है।

अतः भगवान् एवं उनके भक्तोंकी सदा वर्तमान दयापर दृढ़ विश्वास करके आगे बढ़नेकी—तत्परतासे साधन करनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

---

[१८]

सादर प्रणाम। आप तीस वर्षोंसे साधनमें लगे हैं और नौ वर्षोंसे विशेषरूपसे जप कर रहे हैं—यह बहुत आनन्दकी बात है। ऐसे ही करते रहिये। दिन-प्रति-दिन इसे बढ़ाते जाइये। इससे बहुत ही लाभ है।

भगवान्के आश्रित रहकर कभी हताश नहीं होना चाहिये। उनकी प्रतीक्षा करते ही रहना चाहिये। भगवान् कभी प्रकोप करते ही नहीं। उनकी तो बड़ी भारी दया है। उनके वियोगमें भी दया भरी है। शरीरका नाश हो जाय तो भी कोई चिन्ता नहीं। भगवान्की तो इसमें भी दया ही है। चित्तमें लज्जा और ग्लानि कभी नहीं करनी चाहिये। अत्यन्त

उत्साहके साथ साधन करना चाहिये। भगवत्कृपाके प्रभावसे संसार-बन्धनसे छूटना सहज है।

राजाके मन्त्रीकी बात लिखकर आपने पूछा कि उनसे किस प्रकार सिफारिश करायी जाय, सो प्रभुके यहाँ सिफारिशकी आवश्यकता ही नहीं है। प्रभु तो अन्तर्यामी हैं—घट-घटकी जाननेवाले हैं, उन्हें सिफारिशकी अपेक्षा नहीं है। केवल अर्जुनकी तरह भगवान्‌के शरण हो जाना चाहिये। अर्जुन भगवान्‌की शरण होकर कहते हैं—

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥
(गीता २।७)

'कायरतारूप दोषसे उपहत हुए स्वभाववाला तथा धर्मके विषयमें मोहितचित्त हुआ मैं आपसे पूछता हूँ कि जो साधन निश्चित कल्याणकारक हो, वह मेरे लिये कहिये; क्योंकि मैं आपका शिष्य हूँ, इसलिये आपके शरण हुए मुझको शिक्षा दीजिये।'

किया हुआ भगवन्नाम-जप कभी निष्फल नहीं जाता। जप करते-करते भगवत्कृपासे आप ही अनन्यता हो जाती है। राग-द्वेष, काम-क्रोधका नाश भगवत्कृपासे क्षणभरमें हो सकता है, इनके लिये कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिये।

भगवद्दर्शनके लिये बड़ी व्याकुलता लिखी, सो ठीक है; यह ईश्वरकी दया है। इस प्रकारकी व्याकुलता ही भगवद्दर्शन-का उपाय है।

भगवान्के नाम, रूप, गुण, प्रेम, प्रभाव और लीलाओं-को महापुरुषोंके द्वारा सुनें, शास्त्रोंमें पढ़ें और चित्तसे मनन करें। ऐसा करनेसे मनुष्य भगवान्के तत्त्व, रहस्य, गुण और प्रभावको जान जाता है। फिर प्रभुमें श्रद्धा और प्रेम होकर उसे भगवान्के दर्शन हो जाते हैं।

आपने लिखा कि 'हठपूर्वक प्रभुके एक नामके उच्चारणसे ही मनुष्य प्रभुके कृपा-केन्द्रमें आ जाता है, फिर मैंने तो अनेक नाम लिये हैं, मैं उस कृपा-केन्द्रसे कैसे छूट गया ?' सो ठीक है। आप अपनेको उस कृपा-केन्द्रसे बाहर क्यों मानते हैं ? भगवान्का कृपा-केन्द्र तो सभीके लिये सदा खुला हुआ है।

डूबे हुए अज्ञानीका उद्धार करना तो प्रभुके बायें हाथका खेल है। फिर अपने भक्तका उद्धार करनेमें तो कहना ही क्या है ? भगवान्का भक्त स्वयं तो तर ही जाता है, भगवत्कृपासे वह दूसरोंको भी तारनेमें समर्थ हो जाता है।

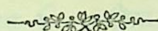
आपने प्रभुकी मायाको प्रबल बतलाया, सो ठीक है; किन्तु जो उस मायापति भगवान्की शरण लेकर उन्हें भजता है, वह मायाको लाँघ सकता है। स्वयं भगवान्ने कहा है—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

(गीता ७। १४)

'क्योंकि यह अलौकिक अर्थात् अति अद्भुत त्रिगुणमयी मेरी माया बड़ी दुस्तर है; परन्तु जो पुरुष केवल मुझको ही निरन्तर भजते हैं, वे इस मायाको उल्लङ्घन कर जाते हैं अर्थात् संसारसे तर जाते हैं।'

समय-समयपर भक्तके अभिमानको चूर करना तो प्रभुकी दया है। भगवान् अपने दासकी जो समय-समयपर परीक्षा लिया करते हैं, वह भी उसके हितके लिये ही है। 'भगवान् सर्वत्र विद्यमान हैं'—यह बात भजन करते-करते उनकी कृपासे ही समझमें आती है। इसलिये निरन्तर भजन करते रहना चाहिये। हृदयकी पवित्रताकी क्या चिन्ता है? उनके नाम-स्मरणसे ही मनुष्य पवित्रात्मा हो जाता है।



[१९]

आपका पत्र प्राप्त हुआ। पैरोंमें बीची पहलेकी अपेक्षा अधिक हो गयी है, पर इसकी आपको तनिक भी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। 'जो कुछ होता है, वह प्रभुकी कृपासे ही होता है'—ऐसा मानकर हर समय प्रसन्न ही रहना चाहिये। हम प्रसन्न नहीं रहते और चिन्ता-शोक करने लगते हैं, यह हमारी कमजोरी ही है। इसे जो भगवान्‌का पुरस्कार समझता है, उसके लिये यही बीमारी पुरस्कारके रूपमें अनुभूत होती है और जो दुःख मानता है, उसके लिये दुःखके रूपमें।

× × × × आपने लिखा कि मानसिक स्थिति भगवान् कब सुधारते हैं—यही देखना है, सो इसके लिये भी आपको चिन्ता नहीं करनी चाहिये। जब कि आपने प्रभुका आश्रय ले लिया है, तब आपको किसी भी बातकी चिन्ता और भय अंशमात्र भी नहीं होना चाहिये। उस प्रभुकी कृपासे उचित समयपर सब अपने-आप ही ठीक हो जाता है। ठीक न भी हो तो क्या चिन्ता है? इस बातको भी वह ही स्वयं सोचे।

नरसिंह मेहताकी पुस्तक गीताप्रेससे अच्छी निकली है, वह देखी होगी।

हर समय प्रसन्न रहना—यह बड़ा ही उत्तम साधन है। अतः 'भगवान् मुझे अवश्य मिलेंगे'—ऐसा दृढ़ निश्चय कर तथा भगवान्‌की दया, प्रेम, स्वरूप, गुण, प्रभाव और चरित्रोंको बार-बार स्मरण करके हर समय प्रसन्न रहना चाहिये। 'भगवान् अवश्यमेव मिलेंगे'—ऐसा दृढ़ विश्वास होनेपर उत्तरोत्तर आशा-प्रतीक्षा तो बढ़ती ही है, अन्तमें एक दिन निश्चय ही उसे भगवान् भी मिल जाते हैं; क्योंकि अपने प्रेमी भक्तके दृढ़ संकल्पको पूर्ण करना भगवान्‌का प्रधान काम है। यदि पूछें कि भगवान् निश्चय ही मिलेंगे, यह दृढ़ विश्वास किस आधारपर हो तो परमेश्वर और महापुरुषोंकी दया, प्रेम, स्वरूप एवं गीता-जैसे सत्-शास्त्र—इनमेंसे किसीको भी आधार बना सकते हैं।

[२०]

(१) शरीर और संसारके विषयभोगोंको क्षणभङ्गुर तथा नाशवान् समझकर इनसे विरक्त रहना चाहिये।

(२) एकान्तमें बैठकर एक सच्चिदानन्दघन परमात्माके सिवा क्षणमात्र भी अन्य किसीका चिन्तन नहीं करना चाहिये। यदि संसार और शरीरका भान हो जाय तो स्वप्नवत् समझकर उसका परित्याग कर देना चाहिये।

(३) व्यवहारकालमें भी उस विज्ञानानन्दघन परमात्मामें स्थित रहते हुए ही इस गुणमय दृश्यवर्गको आकाशमें

प्रतीत होनेवाले तिरवरोंकी भाँति समझकर अणुमात्र भी सत्ता नहीं देनी चाहिये ।

(४) परम आनन्द और परम शान्तिस्वरूप परमात्माके स्वरूपमें स्थित हो रहना चाहिये । भारी-से-भारी दुःख आ पड़नेपर भी उस स्थितिसे विचलित नहीं होना चाहिये । स्थितिमें अन्तर नहीं पड़ना चाहिये । न कोई विशेषता ही आनी चाहिये । हर समय एक-सी स्थिति बनी रहे । राग-द्वेष, हर्ष-शोक या भयका तो नाम-निशान भी नहीं रहना चाहिये । संसारके सारे व्यवहारों-को बाजीगरके बगीचेके समान स्वप्नवत् समझते रहना चाहिये ।

(५) संसारमें सद्गुण, सदाचार और ईश्वरभक्तिका जोरसे प्रचार हो, इसके लिये प्रयत्नशील होना चाहिये । इसमें किञ्चिन्मात्र भी प्रमाद और आलस्य नहीं करना चाहिये ।

(६) शरीर, धन, ऐश्वर्य और कुटुम्ब आदिको क्षणभङ्गुर और अनित्य मानकर इन सबका द्रष्टा रहते हुए इनके साथ नाटककी भाँति लीलामात्र व्यवहार करना चाहिये । इन सबके कारण परम शान्ति और परमानन्दकी प्राप्तिमें किञ्चित् भी बाधा नहीं आनी चाहिये । हर समय विज्ञानानन्दमें मुग्ध रहते हुए समय बिताना चाहिये । यह सारा दृश्यवर्ग क्षणभङ्गुर और नाशवान् होनेके कारण अनित्य है, इसलिये इस दृश्यवर्गको यानी शरीर और ऐश्वर्यको मिट्टीके समान भी आदर नहीं देना चाहिये ।



[२१]

सप्रेम हरिस्मरण । आपका पत्र मिला । मेरे लेखोंको पढ़कर आपके हृदयमें भगवत्प्रेमका आविर्भाव हुआ लिखा, सो यह आपके प्रेमकी बात है।

आपने श्रीकृष्णचन्द्रकी नवधा भक्तिमें अपना जीवन बितानेका निश्चय किया है, यह बड़े ही आनन्दकी बात है। द्वादशाक्षर मन्त्रका बराबर जप करना बहुत उत्तम है। दो-चार मिनिटके लिये भूल जाते हैं, इसके लिये घबरानेकी कोई बात नहीं है। प्रभुपर विश्वास करके अत्यन्त चेष्टा करनी चाहिये। उनकी दयासे सब कुछ हो सकता है। हाँ, कुसङ्गसे अवश्य बचना चाहिये। जो कुसङ्गसे बचनेकी सब प्रकार चेष्टा करता है और अपनेको प्रभुके समर्पित कर देता है, उसे वर्तमान समयके दूषित वातावरणसे भय नहीं हो सकता।

प्रतिदिन श्रीगीताके एक अध्यायका पाठ, भगवान् श्रीकृष्णके नामका मालापर जाप एवं शेष समय अजपा जाप करना बहुत उत्तम है। पर इन सबको करते समय इनके अर्थकी ओर भी ध्यान रखना चाहिये। भगवान्‌की पुष्प आदिसे पूजा एवं गीताके उपदेशोंको विचारपूर्वक काममें लानेकी चेष्टा—ये आत्मोन्नतिके अच्छे साधन हैं। इनके साथ ही आपको गायत्री मन्त्रका जाप भी अवश्य करना चाहिये। मरणपर्यन्त प्रभुकी निष्काम सेवा करूँ और केवल उनकी भक्ति और प्रेमके सिवा उनसे कुछ भी न चाहूँ—ऐसा भाव रखना बड़े ऊँचे दर्जेकी बात है।

जो कुछ हुआ है, भगवान्‌की दयासे ही हुआ है। ऐसा

ही विश्वास रखना चाहिये। इस विश्वासको आप और भी अधिक दृढ़ करते रहिये। × × ×

श्रीभगवान् परम दयालु और सुहृद् हैं। श्रीभगवान् और उनके भक्तोंके अतिरिक्त सब कुछ निःसार है। ऐसा ही मानना चाहिये। आपने निद्रा कम करनेकी बात लिखी, सो छः घंटे सोना कोई बुरा नहीं है। इससे अधिक नहीं सोना चाहिये। भोजन अल्प और नियमित करना चाहिये। अल्पका मतलब यह कि सेर अन्नकी भूख हो तो चौदह छटाँक ही खाकर सन्तोष कर लेना चाहिये। भोजनका सात्त्विक होना विशेष आवश्यक है। आप सत्यका पालन कर रहे हैं—यह बड़ी अच्छी बात है। प्रभु मेरी अवश्य रक्षा करेंगे—ऐसा दृढ़ विश्वास रखना चाहिये। आपका जैसे-जैसे विश्वास बढ़ेगा, वैसे-वैसे ही आपको प्रभुकी अपार करुणाका अनुभव होता जायगा।

आपने लिखा कि आपसे मुझको बड़ी आशा है, सो मैं तो एक साधारण मनुष्य हूँ। मेरी प्रशंसा आपको नहीं लिखनी चाहिये। श्रीपरमात्मादेव ही सब प्रकारसे शरण लेनेयोग्य हैं। सभी प्राणी उनकी शरणमें जाकर कृतार्थ हो सकते हैं। आप निःसंकोच मुझे पत्र लिख सकते हैं। उत्तर देनेमें विलम्ब हो सकता है। बहुत-से ऐसे कारण आ पड़ते हैं, जिससे मैं शीघ्र पत्रोत्तर नहीं दे पाता हूँ।

× × × × श्रीभगवान्‌में अनन्य प्रेम होनेके उपाय पूछे, सो इसके लिये 'नवधा भक्ति' नामकी पुस्तकके अनुसार साधन करना चाहिये। तत्पर होकर साधन करनेसे भगवान्‌में अनन्य प्रेम हो सकता है।

आप जो-जो साधन करते हैं, वे सभी उत्तम हैं। इनके साथ आपको प्रातः-सायं सन्ध्या और गायत्रीका जाप अवश्य करना चाहिये।

× × × × समय रहते प्रभुके चरणोंमें मन लगानेकी चेष्टा कर रहे हैं, यह बड़ी अच्छी बात है। सांसारिक बन्धन प्रभुके शरणागत भक्तोंको बाधा नहीं पहुँचा सकता। मनुष्य जिस किसी भी परिस्थितिमें—चाहे तभी भगवान्‌की ओर बढ़ सकता है।

---

[२२]

सादर हरिस्मरण। ××××। मल, विक्षेप और आवरण—ये तीनों ही अन्तःकरणके दोष हैं और इन तीनोंका सर्वथा नाश करनेकी आवश्यकता है। इसके लिये मनुष्यको अवश्य साधन करना चाहिये। इनके नाशके लिये श्रीमद्भगवद्गीतामें अनेक साधन बतलाये हैं। आत्मस्वरूपका श्रवण, मनन, निदिध्यासन या भगवान्‌के नाम, गुण, लीला-कथाओंका श्रवण-मननरूप भगवान्‌की भक्ति अथवा निष्काम कर्मयोग—ये प्रधान उपाय हैं।

निष्काम कर्मयोगके विषयमें भगवान्‌ने स्वयं गीतामें कहा है—'अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये योगीलोग निष्कामभावसे कर्म किया करते हैं।' (५। ११) 'राग-द्वेषरहित इन्द्रियोंके द्वारा कर्म करनेवालेका अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है।' (२। ६४) इत्यादि।

श्रीमद्भगवद्गीताके चौथे अध्यायके दूसरे श्लोकमें श्रीज्ञानेश्वर महाराज यह कहाँ लिखते हैं कि यह योग आत्मज्ञान होनेके

बाद आचरण करनेयोग्य है ? उन्होंने तो स्पष्ट लिखा है कि पापियोंकी विषयोंमें अभिरुचि है और शरीरपर ही प्रेम है, इसलिये उन्हें आत्मज्ञानकी भूल हो गयी है, वे संसारके भोगोंमें भूले हुए हैं, आत्मज्ञान उन्हें अच्छा नहीं लगता। यह उनके लिखनेका भाव है। आप हर एक बातका अपना मनमाना अर्थ लगाकर उसका अभिप्राय मुझसे पूछते हैं तो मैं उसका क्या उत्तर दूँ ?

काम चञ्चलताका लड़का भी है और बाप भी—ऐसा माननेमें मुझे कोई आपत्ति नहीं; क्योंकि चञ्चलतासे काम बढ़ता है और कामसे चञ्चलता बढ़ती है। अतः चञ्चलता मिटानेके लिये कामको मारनेकी परमावश्यकता है।

आत्मस्वरूपका स्मरण-मनन करनेपर तर्कद्वारा विचार करनेपर प्रत्येक समझदार मनुष्य यह बात समझ सकता है कि आत्मा बुद्धिसे श्रेष्ठ, सूक्ष्म और अत्यन्त सामर्थ्यशील है। इसके लिये यह नहीं माना जा सकता कि अन्तःकरण सर्वथा शुद्ध हुए बिना मनुष्य इतना भी नहीं समझ सकता। यदि यही बात होती तो इस प्रकार आत्मस्वरूपको जाननेके अनन्तर कामको मारनेके लिये कैसे कहा जाता; क्योंकि उसका नाश तो विक्षेप-नाशके साथ पहले ही हो जाना चाहिये था। कारण, आप स्वयं कामको चञ्चलतासे उत्पन्न हुआ मानते हैं। अतः चञ्चलताके नाश होनेके पश्चात् स्वरूपका ज्ञान होता है; ऐसा स्वरूपज्ञान प्राप्त करके कामका नाश करनेके लिये उपदेश देना बन नहीं सकता। इसपर आपको अच्छी प्रकार विचार करना चाहिये।

'मल, विक्षेप और आवरण—ये अन्तःकरणके तीन दोष हैं; इनको नष्ट करना ही होगा। अन्यथा जबतक तीनोंमेंसे एक

भी विद्यमान रहेगा, दूसरे दोष भी उसके साथ आ ही जायँगे ।'—आपका यह लिखना ठीक है । ऐसा माननेमें मुझे कोई आपत्ति नहीं ।

बुद्धिके परे आत्माको समझना साधकका ही कर्तव्य है । सिद्ध पुरुषकी जो समझ है, वह तो मन-वाणीसे समझने-कहनेमें आ ही नहीं सकती । अतः तीसरे अध्यायके ४२ और ४३ वें श्लोक निःसन्देह साधकके लिये ही हैं । सिद्ध पुरुषमें काम रहता ही नहीं, फिर उसके लिये उपदेश देना बन ही कैसे सकता है । उपदेश तो साधकको ही दिया जाता है ।

'प्रारब्धं भुज्यमानो हि'—यह श्लोक गीतामाहात्म्यका है, इससे आप क्या सिद्ध करना चाहते हैं, वह मेरी समझमें नहीं आया ।

गीतामें 'योगी' शब्द एक ही अर्थमें नहीं प्रयुक्त हुआ है, अपने-अपने स्थानपर आवश्यकतानुसार विभिन्न अर्थोंमें प्रयुक्त हुआ है ।

जो महानुभाव इस भावनासे रहित होकर काम करते हैं कि 'आज मुझे यह मिला है, कल यह मिलेगा और ये धन-पुत्रादि मेरे हैं—इत्यादि ।' अर्थात् इन आसुरी भावोंसे रहित होकर जो कर्म करते हैं, उनको आप पूज्यबुद्धिसे प्रणाम करते हैं सो ठीक ही है, मैं भी ऐसा ही करना उचित समझता हूँ, इसमें मेरा कोई मतभेद नहीं ।

[२३]

………के शरीर शान्त होनेका समाचार मालूम हुआ, बहुत चिन्तावाली बात हुई । भाई…………ने लिखा है कि

उनको बहुत चिन्ता हो रही है। ·········की स्त्रीकी भी अभी छोटी उम्र है, उसे भी विशेष चिन्ता है तथा लोगोंका रुपया भी देना बाकी है सो उनका लिखना बहुत ठीक है। किन्तु निरुपाय बातके आगे कुछ भी वश नहीं चलता, इसलिये अब आप चिन्ता-शोक करके अपने शरीर एवं मनको व्यथित न करें। चिन्ता-शोक करनेमें सिवा हानिके कुछ भी लाभ नहीं है। गयी हुई वस्तु कभी वापस आयेगी नहीं। अतः जिस किसी प्रकार चित्तमें सन्तोष करना चाहिये।

(१) भगवान्‌की वस्तु भगवान्‌के पास चली गयी। अपना उसके साथ इतना ही संयोग था—ऐसा समझकर सन्तोष करना चाहिये।

(२) सांसारिक भाई-बन्धुओंका सङ्ग वैसा ही है, जैसा कि रेलगाड़ीके डिब्बेमें जुटे हुए विभिन्न स्थानोंके लोगोंका होता है। अपने-अपने निर्दिष्ट स्टेशनपर लोग उतरते जाते हैं और नये-नये लोग आते रहते हैं। जिनका स्टेशन आ गया, वे वहीं उतर गये। हमें भी अपना स्टेशन आनेपर डिब्बेसे चले जाना है। इसी तरह एक दिन इस शरीरको छोड़ना ही है। यह तो नाशवान् है ही, जन्मनेवालेकी मृत्यु निश्चित है। अतः उसके साथ हमारा इतने ही समयका सम्बन्ध था—इस प्रकार समझकर सन्तोष करना चाहिये।

(३) भगवान्‌पर भरोसा रखना चाहिये। भगवान् पापका फल भुगताकर मनुष्यको उऋण बनाते हैं यानी पापके फलस्वरूप दुःख देकर पापसे मुक्ति देते हैं। अपनेको यह अनुचित मालूम देता है, किन्तु अपने पापोंका ही यह फल है और हम पापोंसे मुक्त हो रहे हैं—ऐसा समझकर सन्तोष करना चाहिये।

(४) पूर्वजन्मका वैर-बदला है, वह चुकाया जाता है। जो किसीको किसी प्रकार कष्ट देता है, वह वैरी ही है। वह अपने पूर्वके वैरका बदला चुकाता है। इसलिये···के लिये चिन्ता-शोक नहीं करना चाहिये। किसी भी प्रकार सन्तोष करना चाहिये।

इन सब बातोंको विचारकर चिन्ता-शोकका त्याग कर अपने आत्माके कल्याणके लिये सत्सङ्ग करना चाहिये। रामायण तथा गीताका श्रवण, पठन करना चाहिये, जिससे शान्ति मिले। भगवान्‌का भजन, ध्यान, पूजा, सेवा करनी चाहिये। इससे शान्ति प्राप्त हो सकती है। भगवान्‌की दयाका अनुभव करनेसे भी शान्ति हो सकती है। हमारे रहते हमारा छोटा भाई चला गया, बड़े भी प्रायः चले गये, तब हमारा भी क्या विश्वास है—इस तरह समझकर वैराग्य करना चाहिये। मृत्यु एक दिन अवश्य मारनेवाली है। जल्दी चेतना चाहिये। इस अवसरपर भी यदि नहीं चेतेंगे तो फिर कब चेतेंगे ? शरीर नाशवान् है, संसारमें कहीं भी सुख नहीं है–ऐसा मानकर संसारसे वैराग्य करके भगवान्‌की पूजा, ध्यान, मननमें चित्त लगाना चाहिये और सत्सङ्ग करना चाहिये। यही सार है। घरवालोंको धीरज दिलाना चाहिये। सभीको भजन-ध्यानमें लगाना चाहिये। घरमें नित्य भगवत्-कथा पढ़नी-सुननी चाहिये। इससे बढ़कर शान्तिका और कोई सरल उपाय नहीं है।

---

[२४]

(१) आपने लिखा कि तेरह करोड़ नाम जपनेसे श्रीभगवान्‌के दर्शन होते हैं, वह जप किस रीतिसे करना चाहिये सो इस

सम्बन्धमें तो वे ही संत उत्तर दे सकते हैं, जिन्होंने ऐसा कहा है। मैं तो इतना कह सकता हूँ कि भगवन्नामका जप मनुष्य चाहे जिस समय कर सकता है। नाम-जप ध्यान-सहित निष्कामभावसे होना चाहिये; मैं इसीको उत्तम रीति मानता हूँ। मालाके विषयमें पूछा सो माला तुलसीकी हो तो उत्तम है, चन्दनकी मालापर भी जप किया जा सकता है।

(२) कितनी संख्यामें जप करनेपर भगवान् दर्शन देंगे, यह नहीं कह सकता। आप श्रीरामदासस्वामीका जपा हुआ मन्त्र जपते हैं सो बहुत ठीक है। मन्त्र बड़ा उत्तम है। इस मन्त्रके जपनेसे भी वही फल होता है। इसलिये मन्त्रको परिवर्तन करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

(३) गायत्री-मन्त्र जपते समय अधिष्ठातृदेवी होनेके कारण एक बार गायत्रीदेवीका स्मरण कर लेना चाहिये और अपने इष्टदेव श्रीरामजीका ध्यान तो निरन्तर करना चाहिये। गायत्री-मन्त्रमें परमात्माकी स्तुति, ध्यान और प्रार्थना है। वही परमात्मा साक्षात् श्रीरामरूपमें प्रकट हुए हैं। अतः गायत्री-मन्त्रके द्वारा भी आप श्रीरामकी ही उपासना कर रहे हैं—यही समझना चाहिये।

(४) ध्यान सदा मानसिक ही होता है। रही पूजा और जपकी बात, सो किसी विशेष कारणसे स्नान न करनेपर जप और पूजा भी मानसिक ही करने चाहिये, किन्तु पूजा करनेके पूर्व हाथ-मुँह धो लेने चाहिये। गायत्री-मन्त्रके सिवा अन्य भगवन्नामोंका जप स्नान किये बिना भी किया जा सकता है, उसमें कोई दोष नहीं है।

(५) आप सात घंटे जप करते हैं सो बहुत उत्तम है। भगवान्‌के जपमें समय और संख्याकी प्रधानता नहीं है। प्रधानता है श्रद्धा और प्रेमकी। यदि अतिशय श्रद्धा और प्रेम हो तो भगवान्‌के दर्शन एक ही दिनमें हो जायँ। इसीसे भगवद्दर्शनके लिये समय और संख्याका परिमाण नहीं बतलाया जा सकता। जितना तीव्र प्रेम होगा, उतना ही शीघ्र भगवान् मिलेंगे। अतः भगवान्‌में प्रेम और विश्वास बढ़ाना चाहिये। उनके गुण और प्रभावको बार-बार याद करके प्रसन्न होना चाहिये।

(६) उपांशुकी अपेक्षा मानसजप श्रेष्ठ है। उपांशुकी दस मालासे जो फल मिलता है, वही फल मानसजपकी एक मालासे प्राप्त हो जाता है। इसलिये समय चाहे जितना भी लगे, जप मानसिक ही करना चाहिये। होठ और कण्ठको न हिलाते हुए केवल हृदयसे भगवान्‌के नामका जो चिन्तन किया जाता है, उसे मानसिक जप कहते हैं। मनसे प्रेमपूर्वक जितना भजन होता है, उसका बड़ा मूल्य है। अन्यथा वाणीसे भी जप होता रहे तो निद्रा आनेका डर कम रहेगा और इससे वाणी भी सफल होगी। आँख खुली रखकर भी मनसे जप किया जा सकता है, जैसे संसारकी बातें आँख खोले हुए ही याद कर ली जाती हैं।

(७) जब निद्रा आने लगे, तब आँखें खोल लेनी चाहिये और सामने अपने इष्टदेवकी मूर्ति रखकर उसका ध्यान करना चाहिये।

(८) मैं साधारण आदमी हूँ, अपना अनुभव क्या बताऊँ? शास्त्रों

एवं महापुरुषोंके वचनोंके आधारपर तथा जो अपनी बुद्धिसे समझमें आता है, वही लिखता हूँ।

(९) गीताप्रेससे 'श्रीप्रेमभक्ति-प्रकाश' नामक पुस्तक मँगाकर देखनी चाहिये। उसमें श्रीविष्णुभगवान्‌की पूजाकी विधि बतलायी है, उसी प्रकार आप अपने इष्टदेव श्रीरामकी पूजा कर सकते हैं। प्रत्येक एकादशी और पूर्णिमाको व्रत रखना चाहिये।

(१०) जिस प्रकार दिनमें पूजा करें, उसी प्रकार रातमें भी कर सकते हैं। बाह्यपूजासे मानसपूजा श्रेष्ठ है।

(११) नींद तोड़नेके लिये टहलना चाहिये। आसन भजनके लिये लगाया जाता है। यदि आसनपर बैठे-बैठे नींद आने लगती है तो उसकी अपेक्षा तो टहलते हुए भगवान्‌का भजन करना बहुत उत्तम है। इसलिये जब नींद आने लगे तभी टहलते हुए भजन करे। विशेष आलस्य आवे तो आसन बीचमें तोड़नेसे कोई हानि नहीं है।

(१२) व्रतके दिन जो अधिक जप करते हैं, वह भी जपसंख्यामें शामिल होता है।

(१३) उठते-बैठते, चलते-फिरते, टहलते जो जप किया जाता है, उसे भी भगवान् नियत संख्याके अंदर समझ लेते हैं। किसी भी अवस्थामें भगवान्‌का नाम लिया हुआ व्यर्थ नहीं जाता।

(१४) 'जय जय राम' मन्त्रका कितनी संख्यामें पुरश्चरण होता है और पुरश्चरणके बाद क्या करना चाहिये—यह मैं नहीं बतला सकता।

(१५) समर्थ श्रीरामदास स्वामीको आप गुरु मान सकते हैं।

[२५]

आपका पत्र समयपर मिल गया था, किन्तु दौरेपर रहनेके कारण उत्तर देनेमें विलम्ब हुआ, इसके लिये क्षमा करेंगे। आपके प्रश्नोंका उत्तर इस प्रकार है--

भगवान् योगक्षेम वहन करते हैं और वे आपकी स्थितिसे आपकी अपेक्षा अधिक परिचित हैं--यह कहना ठीक ही है। आपने लिखा कि भगवान् कभी-कभी उपेक्षा कर देते हैं सो ऐसी बात नहीं है। भगवान् भक्तकी उपेक्षा नहीं कर सकते। भगवान्से की गयी आर्त्त प्रार्थना कभी खाली नहीं जाती। भगवान्से यथेष्ट उत्तर न मिलनेपर यह नहीं समझना चाहिये कि भगवान्ने उपेक्षा कर दी; बल्कि भगवान्की इस तरहकी प्रतीत होनेवाली उपेक्षा भी आपके परम हितके लिये ही है। वे जो कुछ करते हैं, उसे ही ठीक मानकर सदा प्रसन्न रहना चाहिये।

नाम-जपके विषयमें आपने लिखा कि नाम-जप इहलोक तथा परलोक-विषयक यथाभिमत फल देनेवाला होता है सो यह सर्वथा सत्य है तथापि परम दयालु भगवान् प्रार्थना करनेपर भी भक्तके साधनमें बाधा देनेवाली कामनाओंकी पूर्ति नहीं करते। आपने लिखा है कि मेरे हृदयमें दाम्भिक प्रेम या जो भी कुछ प्रेमका उद्रेक है, उसके स्रष्टा तो मैं उन्हींको मानता हूँ सो ठीक है, ऐसा ही मानना चाहिये। ईश्वरकी सम्मति यही रहती है कि जीव मेरी ओर झुके। वे इस प्रयत्नमें सहायता भी करते हैं। उनसे अलग करनेमें अर्थात् परमात्मासे विमुख होनेमें काम ही हेतु है, न कि परमात्माकी इच्छा। मनुष्यको सदा ही

इस कामशत्रुसे सावधान रहना चाहिये और भगवान्‌के गुण, प्रभावको बार-बार याद करके सदा आनन्दमें मग्न रहना चाहिये।

यह ठीक है कि मायानिद्रासे जागनेपर ही मनुष्यका भय दूर होता है। आपने स्वप्नमें किये गये मृत्युञ्जय-जपकी व्यर्थताका उदाहरण देते हुए मायाग्रसित जीवोंके द्वारा किये गये शुभ कर्मोंकी व्यर्थता सिद्ध की, सो यह ठीक नहीं है। स्वप्नमें मनुष्य जिस प्रकार भयसे डरकर उस आपत्तिसे बचनेके लिये चेष्टा करता है और इस प्रक्रियासे उसकी नींद टूट जाती है और वह भयरहित हो जाता है, उसी प्रकार शुभकर्मरूप साधनोंको निष्कामभावसे करता हुआ मनुष्य मायानिद्रासे जाग जाता है। तब उसके सब भय दूर हो जाते हैं और वह परमानन्दको प्राप्त हो जाता है।

श्रद्धा, प्रेम और विश्वासके बिना किये जानेवाले कर्म व्यर्थके समान अवश्य हैं; किन्तु न करनेकी अपेक्षा श्रद्धारहित शुभ कर्म करना भी उत्तम है; क्योंकि शुभ कर्म करते-करते श्रद्धा उत्पन्न हो सकती है। ईश्वरमें विश्वास होनेके लिये अमोघ उपाय पूछा सो इसके लिये भगवान्‌का निष्काम भजन और सत्सङ्ग ही अमोघ उपाय है।

कुन्तीदेवीने सदाके लिये दुःखका वरदान इसलिये माँगा था कि उनको दुःखमें भगवान्‌की स्मृति बनी रहती थी।

भगवान्‌के द्वारा धन-हरण किये जानेकी बात लिखी, सो इस विषयमें यह समझना चाहिये कि भगवान् सभी भक्तोंका धन हरण कर लेते हैं--ऐसी बात नहीं है। जिसके कल्याणमें

धन बाधक होता है, उसीके धनका अपहरण करते हैं। भक्त ध्रुव, प्रह्लाद, अम्बरीष आदिके धनका इसलिये अपहरण नहीं किया कि उनके लिये धन भगवान्‌की भक्तिमें बाधक नहीं था।

आपका कार्ड भी मिल गया था। नाम-जपके विषयमें आपने पूछा, सो नाम-जपका महत्त्व समझना चाहिये और उसके गुण, प्रभावकी भी स्मृति होनी चाहिये। नामके साथ नामीका स्मरण होना चाहिये। ऐसा होनेपर फिर नाम-जप करनेमें कठिनता प्रतीत नहीं होगी। जैसे इस समय कभी-कभी बिना चेष्टा किये ही भगवान्‌के नाममें मन लग जाता है, लगाना नहीं पड़ता और उसमें आनन्द-ही-आनन्द मालूम होता है, वैसे ही अनायास ऐसी अवस्था फिर बराबर रहने लगेगी। यह उसका नमूना है, जो कि बिना ही कारण दया करनेवाले भगवान् साधकको अपनी ओर खींचनेके लिये कभी-कभी दिखला देते हैं। एक बात यह भी ध्यानमें रखनी चाहिये कि भगवान्‌का स्मरण उनमें प्रेम बढ़ानेके लिये तथा उनसे मिलनेके लिये किया जाता है, न कि प्रत्यक्ष आनन्द भोगनेके लिये। अतः भजन-स्मरणमें आनन्द न भी मालूम हो तो भी साधनमें शिथिलता नहीं आनी चाहिये, बल्कि अधिक उत्साहसे साधन करना चाहिये।



[२६]

आपका पत्र मिला। पत्र पढ़नेसे यह मालूम हुआ कि आप मुझसे मिलें तो आपकी शङ्काओंके समाधानकी चेष्टा की जा सकती है। फिर भी आपके प्रश्नोंका उत्तर संक्षेपमें लिख

रहा हूँ । मैं दौरेपर था, इसलिये उत्तर देनेमें विलम्ब हुआ, इसके लिये क्षमा करेंगे ।

(१) मैंने ठीक ही लिखा है कि गीता मेरे अनुभवका अनुवाद नहीं है । गीता श्रीभगवान्‌का अनुभव है । हाँ, श्रीभगवान्‌के अनुभव मेरे अनुभवके लक्ष्य अवश्य हैं । आपने लिखा कि पाँच हजार वर्ष पूर्व भी अनुभवियोंका अस्तित्व था, सो ठीक है; किन्तु गीता तो श्रीभगवान्‌का अनुभव है और यह तबसे है जबसे श्रीभगवान् हैं, भले ही इसका प्रकारान्तर-से प्रादुर्भाव और तिरोभाव होता रहे ।

(२) कर्मयोगका साधन अन्तःकरणकी मलिन दशामें एवं देहाभिमान रहते हुए ही होता है । इसकी पूर्णता होनेपर तो सब दोष नष्ट हो जाते हैं, किन्तु इसका आरम्भ तो मलिन दशामें ही होता है । स्वरूपस्थिति तो इसका फल है । आप लिखते हैं कि इन्द्रियोंपर स्वामित्व मलिन अन्तःकरण नहीं जमा सकता, सो ऐसा नहीं माना जा सकता । योगके द्वारा मनुष्य इन्द्रियोंका संयम करके सिद्धियोंको प्राप्त कर सकता है, पर यह आवश्यक नहीं है कि उसका अन्तःकरण सर्वथा शुद्ध ही हो ।

आपने लिखा कि अन्तःकरणकी मलिन दशा चञ्चलताको कहते हैं, सो यह भी ठीक नहीं है । मलिन दशा और चञ्चलता भिन्न-भिन्न दोष हैं । मलिन दशाको मल-दोष कहते हैं और चञ्चलताको विक्षेप-दोष; दोनों एक-दूसरेसे सर्वथा भिन्न हैं ।

'तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ' (गीता ३ । ४१) को उद्धृत करते हुए आपने लिखा कि यहाँ भगवान्‌ने चञ्चलताका नाश करनेके लिये कहा है, सो यह बात भी नहीं है, यहाँ कामको मारनेका प्रकरण है, न कि चञ्चलताको हटानेका ।

यह भी ध्यानमें रखना चाहिये कि गीता अध्याय ३ के ४२-४३ वें श्लोकोंका प्रकरण साधककी दृष्टिसे है, सिद्धकी दृष्टिसे नहीं ।

आप लिखते हैं कि शुद्ध आत्माके साक्षात्कारके बिना अन्तःकरणकी चञ्चलता शमन नहीं हो सकती, सो यह बात भी गीताके सिद्धान्तसे ठीक नहीं है । भगवान्‌ने स्वयं कहा है कि अभ्यास और वैराग्यसे अन्तःकरण वशमें किया जा सकता है—

'अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥'

(६ । ३५)

आपने 'प्रारब्धं भुज्यमानो हि गीताभ्यासरतः सदा' इस श्लोकके विषयमें लिखा, सो यह श्लोक गीताका नहीं है तथा प्रारब्धका भोग तो साधन और सिद्धावस्था दोनोंमें ही रहता है । पर यह समझमें नहीं आता कि इससे कर्मयोगके सिद्धान्तमें क्या क्षति आती है ।

जिनका अन्तःकरण मलिन है, ऐसे पुरुषोंके लिये भी भगवान्‌ने स्वयं 'योगी' शब्दका प्रयोग किया है । गीताके आठवें अध्यायके २५ वें श्लोकमें भगवान्‌ने कहा है—'तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते ।' अतः मैंने ठीक ही लिखा है कि आत्माकी मलिन दशामें यदि कर्मयोगका आरम्भ नहीं हो सकता तो फिर 'योगी लोग आत्मशुद्धिके लिये कर्म करते हैं' (गीता ५ । ११)—भगवान्‌का यह कहना नहीं बन सकता ।

मेरे चौथे प्रश्नके उत्तरपर भी आपने शङ्का की है, पर आपकी शङ्का क्या है, यह ठीक नहीं समझ सका इसलिये उसका उत्तर नहीं लिख रहा हूँ ।

वेदान्तके ग्रन्थोंकी बात लिखी, सो ठीक है; पर मैं तो यही निवेदन करूँगा कि अन्तःकरणकी मलिन दशामें भी मन वशमें हो सकता है। आपको प्रायः सभी ग्रन्थोंमें यह बात मिल सकती है कि मल-दोषके नाशके लिये कर्मयोगकी साधना करनी चाहिये।

मैं अपने दूकानके कार्यमें कर्मयोगका साधन कैसे करता हूँ—यह पूछा, सो यह एक व्यक्तिगत प्रश्न है, इसका उत्तर मैं नहीं देना चाहता।



[२७]

सप्रेम हरिस्मरण ! आपका पत्र मिला। समाचार मालूम किये। आप 'नवधा भक्ति' का, जबसे वह प्रकाशित हुई, तबसे नित्य पाठ करते हैं और तदनुसार स्मरण-कीर्तनकी चेष्टा रखते हैं, सो बहुत अच्छी बात है। गीताप्रेससे 'ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप' नामक एक पुस्तिका प्रकाशित हुई है, उसे भी पढ़ना चाहिये। उसके अनुसार साधन किया जाय तो और भी अधिक लाभ हो सकता है। आपने अपने जीवनका प्रधान उद्देश्य श्रीसीताराम-नामका उच्चारण करना ही समझ लिया, सो यह बहुत ही उत्तम बात है। आपने जप करनेके लिये वन, मन और घरका कोना—ये तीन स्थान चुने सो बहुत ठीक है।

आपने लिखा कि 'अब निरन्तर अभ्यास होनेके बाद ऐसा दीख पड़ता है कि नामने मेरे मनपर कब्जा कर लिया है, क्योंकि चलते-फिरते, उठते-बैठते नामका जप मेरे मनमें चलता ही रहता है; किन्तु सोनेमें भी चलता ही रहना चाहिये, जैसा

कि महात्मा गान्धीजीका भी अनुभव कहता है। पर इसे प्रमाण देकर समझानेकी चेष्टा करें।' सो ठीक है, इसमें नित्यका जीवन ही प्रमाण है। मनुष्य दिनमें जैसा काम करता है, जैसा मनन करता है, वैसा ही स्वप्न आता है अर्थात् दिनके मननके अनुसार रात्रि व्यतीत होती है। तब फिर प्रेमसे प्रभुका नाम निरन्तर जपनेवालोंके स्वप्नमें भी नाम-जप होता रहे, इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं। अभिप्राय यह है कि दिनमें जैसा मनन किया जाता है, वैसा ही रातको स्वप्न आता है। यही प्रमाण है। इसलिये दिनमें जाग्रत् अवस्थामें निरन्तर नाम-जप होता रहे, उसके स्वप्नमें भी नाम-जप होता रहता है।

आप 'विनय-पत्रिका'का पठन-पाठन करते रहते हैं, सो बड़ी अच्छी बात है। 'विनय-पत्रिका' बहुत अच्छी चीज है, उसके अनुसार भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये।

आपने पूछा कि 'राम-नाम-जप या भगवद्भक्ति किसी योग्य गुरुके द्वारा मन्त्रदीक्षित हुए विना पूरी नहीं हो सकती, इसपर आपका क्या विचार है' सो ठीक है। यदि कोई योग्य पुरुष मिल जायँ तब तो उन्हें गुरु बनाकर उनकी आज्ञाके अनुसार साधन करना चाहिये। नहीं तो, भगवान् सबके परम गुरु हैं, उनका आश्रय लेकर गीतादि शास्त्रोंमें लिखी उनकी आज्ञाके अनुसार चलनेवालेकी भक्ति निःसन्देह पूर्ण हो जाती है अर्थात् उसे भगवत्प्राप्ति हो जाती है। अतः योग्य गुरु न मिले तो भगवान्‌को परम गुरु मानकर साधन करना चाहिये।

आपने लिखा कि राम-नामकी क्या शक्ति मानी गयी है सो राम-नामकी शक्ति अनन्त, अपार, असीम है। नाम

असम्भवको भी सम्भव कर सकता है। नामकी महिमा कहते हुए कठोपनिषद्में लिखा है—

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम्।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्॥
(१।२।१६)

'यह अक्षर—ॐ ही सगुण ब्रह्म है, यही परात्पर निर्गुण ब्रह्म है, इसी ॐकाररूप अक्षरको जानकर जो पुरुष जैसी इच्छा करता है, उसे वही प्राप्त हो जाता है।'

यह प्रणवकी महिमामें कहा है। प्रणव—ॐ कारमें और रामनाममें कोई भेद नहीं है। जो 'ॐ' है, वही 'राम' है। इसलिये भगवन्नामकी अपरिमित शक्ति है, चाहे वह कोई-सा भी नाम हो। इससे जो पुरुष जैसा चाहता है, वही प्राप्त हो जाता है। नामकी अनन्त शक्ति है, उसे कोई अपने मुखसे कह भी नहीं सकता।

श्रीतुलसीदासजीने कहा है—

कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई॥

जिस अपने नामकी महिमा स्वयं भगवान् श्रीराम भी नहीं कह सकते, उसकी महिमा कौन बतला सकता है?

आपने पूछा कि इसके लिये अथक परिश्रम किस प्रकार करना चाहिये, सो श्रीभगवन्नामका जप निरन्तर, निष्काम भावपूर्वक, प्रेमसहित और गुप्त हो, इसके लिये जी-तोड़ परिश्रम करना ही अथक परिश्रम करना है। अथकका अर्थ यह कि जबतक भगवद्दर्शन न हो, तबतक जी-तोड़ परिश्रम करे, कहीं विश्राम न ले।

नाम-जपके बारेमें श्रीगान्धीजीका लेख भेजा--सो उनका लिखना ठीक है। आपने लिखा कि मुझे विश्वास है कि मुझको आपसे ही सहायता मिलती रहेगी, सो सहायता देनेवाले तो भगवान् हैं। हाँ, मुझसे कोई बात पूछेंगे तो मैं अपनी बुद्धिके अनुसार बतला सकता हूँ।

[२८]

आपका जैसा प्रेम और भाव है, उसका मैं बदला नहीं चुका सकता; इसीलिये मैं आपका ऋणी हूँ। और क्या लिखूँ ? जिस प्रकार आप मुझसे प्रेम करते हैं, उससे भी अत्यधिक प्रेम भगवान्में करना चाहिये। आपने आनेके लिये लिखा, यह आपका प्रेम है; किन्तु जब प्रेम है, तब मैं दूर होकर भी आपके समीप ही हूँ।

हर समय अपने ऊपर भगवान्की दया और प्रेम परिपूर्ण समझकर आनन्दमें मग्न रहना चाहिये।

जो कुछ होता है, भगवान्की आज्ञासे ही होता है, इस प्रकार मानकर प्रसन्नचित्त रहना चाहिये।

भगवान् सब जगह विद्यमान हैं। उनका पद-पदपर दर्शन करके आनन्द मानना चाहिये।

यह सब भगवान्की लीला है। सब भगवान्का ही काम है। सब कुछ भगवान्की आज्ञासे ही होता है, वही जो कराना चाहता है, करा लेता है--ऐसा मानना चाहिये; अपनेको तो केवल निमित्तमात्र मानना चाहिये।

[२९]

मनसे भगवान्‌के स्वरूपका ध्यान, वाणीसे भगवान्‌के नामका जप और शरीरसे भगवान्‌की सेवा करनी चाहिये। इस प्रकार निष्कामभावसे चेष्टा करनेसे बहुत जल्दी भगवान्‌के दर्शन हो सकते हैं।

समय बहुत बीत गया। अब भी नहीं चेतेंगे तो फिर कब चेतेंगे। अब आपको क्या करना बाकी है? संसारके सब काम कर लिये। अब बचे हुए समयको भगवान्‌के अर्पण कर देना चाहिये, जिससे जन्म सफल हो जाय। नहीं तो, पीछे पछताना पड़ेगा। पीछे पछतानेसे कोई काम नहीं चलेगा। इसलिये जल्दी चेतना चाहिये। मनुष्य-जैसी दुर्लभ देहको पाकर तुच्छ भोगोंके भोगनेमें समयको व्यर्थ नहीं गँवाना चाहिये। संसारके भोग तो पशु योनिमें भी मिल जाते हैं। मनुष्यका जन्म इन क्षणभङ्गुर, नाशवान् भोगोंके लिये नहीं मिला है। यह केवल भगवान्‌में प्रेम कर भगवान्‌के दर्शन करनेके लिये मिला है। अतः उसी कामकी सिद्धिमें अपना समय लगा देना चाहिये।

[३०]

अपना समय भगवान्‌के भजन, ध्यान तथा सत्सङ्गमें बिताना चाहिये। भजन-ध्यानका साधन तेज हो, इसके लिये सत्सङ्ग करना चाहिये। साधनके बिना जो समय जाता है, उसे व्यर्थ समझा गया है। पहले जो समय व्यर्थ चला गया, वह तो चला ही गया। अब एक पल भी व्यर्थ नहीं बिताना चाहिये। एक भगवान्‌के सिवा आपका कोई भी नहीं

है । शरीर भी कोई काम नहीं आवेगा, फिर दूसरे पदार्थोंकी तो बात ही क्या है ।

रात्रिमें जभी आँख खुले, तभी तुरंत भगवान्‌को याद कर लेना चाहिये तथा एक क्षणके लिये भी भगवान्‌का विस्मरण हो जाय तो उसके लिये पश्चात्ताप करना चाहिये, जिससे बादमें पश्चात्ताप न करना पड़े ।

सर्वत्र भगवान्‌को विद्यमान समझकर, सब कुछ भगवान्‌की लीला समझकर एवं अपने ऊपर भगवान्‌की दया और प्रेम समझकर हर समय आनन्दमें मग्न रहना चाहिये । जो कुछ भी हो, उसको भगवान्‌का विधान समझकर प्रसन्न रहना चाहिये । जिस किसी प्रकार चित्तमें परम आनन्द हो, वही चेष्टा करे ।



[३१]

× × × । दर्शनोंके योग्य श्रीभगवान् हैं । उन्हींका दर्शन करना चाहिये । मुझसे मिलनेके लिये लिखा सो यह आपके प्रेमकी बात है । संसार-सागरसे श्रीभगवान् ही तार सकते हैं । उनकी आज्ञाके अनुसार कर्म करना चाहिये । श्रीभगवान्‌ने स्वयं गीतामें कहा है—

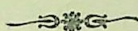
ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥
तेषामहं समुद्धर्त्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥

(१२ । ६-७)

'परन्तु जो मेरे परायण रहनेवाले भक्तजन सम्पूर्ण कर्मोंको मुझमें अर्पण करके मुझ सगुणरूप परमेश्वरको ही अनन्य भक्तियोगसे निरन्तर चिन्तन करते हुए भजते हैं, हे अर्जुन ! उन मुझमें चित्त लगानेवाले प्रेमी भक्तोंका मैं शीघ्र ही मृत्युरूप संसार-समुद्रसे उद्धार करनेवाला होता हूँ ।'

आपने लिखा कि मेरा पापोंसे निस्तार आपकी शरणसे ही होगा, सो ऐसा नहीं लिखना चाहिये। शरण लेने योग्य श्रीपरमात्मादेव हैं।

भोग, प्रमाद, आराम, स्वाद, शौक, आलस्य, दुराचार और दुर्गुणोंका त्याग करके यज्ञ, दान, तप, व्रत, सेवा, पूजा, सत्य और ब्रह्मचर्य आदि सदाचार तथा शम, दम, तितिक्षा, क्षमा, शान्ति, दया, सन्तोष, त्याग, वैराग्य, पवित्रता आदि सद्गुणोंका सेवन करना चाहिये । एवं श्रीभगवान्‌के नाम, रूप, गुण, प्रभाव तथा चरित्रोंका श्रवण, मनन और कीर्तन श्रद्धा-प्रेमपूर्वक तत्परताके साथ नित्य-निरन्तर करनेके लिये प्राणपर्यन्त चेष्टा करनी चाहिये ।



[३२]

बहुत-सा समय बीत गया । अब तो केवल भगवान्‌की भक्तिमें ही समय बिताना चाहिये। अन्य कामोंसे प्रेम हटाना चाहिये । भगवान्‌के ध्यानमें मन नहीं लगता, इसका उपाय पूछा सो ठीक है।

(१) भगवान्‌में श्रद्धा-प्रेम होनेसे मन लग सकता है। भगवान्‌के प्रेम, प्रभाव, गुण और लीलाओंकी कथा सुननेसे,

पुस्तकोंमें पढ़नेसे तथा उनका तत्त्व, रहस्य जाननेसे भगवान्‌में श्रद्धा-प्रेम हो सकता है।

(२) जहाँ-जहाँ मन जाय, वहाँ-वहाँसे मन हटाकर भगवान्‌में लगानेका लगातार अभ्यास करनेसे भी भगवान्‌में मन लग सकता है।

(३) जहाँ-जहाँ मन जाय, वहीं श्रीभगवान्‌का ध्यान करें।

(४) मन भगवान्‌में न लगे तो भी भगवान्‌के नामका जप और उनके गुणोंका कीर्तन करना चाहिये। इस प्रकार करनेसे आगे जाकर मन भगवान्‌में लग सकता है। मन भगवान्‌में न लगे, तब भी कोई हानि नहीं। भगवान्‌के नाम और गुणोंके कीर्तनसे भी बहुत लाभ है।

आपने लिखा कि 'हमारे किसी बातकी बाधा नहीं है, समय बहुत मिलता है' सो यह भगवान्‌की दया है। भगवान्‌का भरोसा रखकर उनमें प्रेम होनेके लिये एकान्तमें करुणाभावसे रुदन करना चाहिये।

एकादशी पहली उत्तम है, दशमीविद्धा हो तो दूसरी। लोग दोनों ही दिन व्रत रखते हैं। आप भी चाहे जिस दिन रख सकते हैं।

असली बात यह है कि भगवान्‌में प्रेम होना चाहिये। वह प्रेम प्राप्त करनेके लिये श्रीभगवान्‌के नाम, रूप, गुण, प्रभाव, लीलाधामकी महिमा भक्तोंसे सुननी चाहिये। ऐसे पुरुष न मिलें तो पुस्तकोंमें पढ़नेसे भी लाभ हो सकता है। स्वाध्याय भी सत्सङ्गके समान ही है। उनके कहनेके अनुसार चलना चाहिये।



[३३]

प्रेमपूर्वक हरिस्मरण ! आपका पत्र मिला, समाचार विदित हुए। आपने मुझे सच्चा भक्त और योगी समझकर प्रश्न किये, सो यह तो आपकी मान्यता है। परन्तु मैंने योगमार्गका कोई विशेष अभ्यास नहीं किया है और जैसे भक्तोंकी शास्त्रोंमें महिमा आती है, वैसा भक्त भी मैं अपनेको नहीं समझता। यह बात अवश्य है कि लोग मुझे भक्त कहते हैं। आपने प्रश्नोंका उत्तर उच्च योगीके अनुभवद्वारा समझानेके लिये लिखा, सो इसमें तो मैं असमर्थ हूँ। शास्त्र और महापुरुषोंसे सुनकर मैंने जो कुछ समझा है, उसमेंसे जितना लिखा जा सकता है, वही लिख रहा हूँ। आपके प्रश्नोंका उत्तर क्रमशः इस प्रकार है—

(१) आद्यशक्ति भगवान्‌की प्रकृति देवी है। इसीको योगशक्ति भी कहते हैं। सर्वशक्तिमान् परब्रह्म परमेश्वरका नाम ही निरञ्जन है। 'निरञ्जन' शब्दका अर्थ है—जिसमें किसी प्रकारका कोई भी दोष न हो।

(२) निरञ्जन भगवान् सर्वेश्वर अपनी आद्यशक्ति योगमायासे जीवोंके कर्मानुसार उनके कर्मोंका फल भुगतानेके लिये अपनेको ब्रह्मा, विष्णु, महेश–इन तीन रूपोंमें प्रकट करते हैं। जिनमें ब्रह्माको सृष्टिका सृजन और विस्तार करनेके लिये, विष्णुको उसका पालन करनेके लिये और शङ्करको उसका संहार करनेके लिये प्रकट करते हैं अर्थात् वे स्वयं ही अपनी योगशक्तिसे तीन रूपोंमें विभक्त होकर आविर्भूत हो जाते हैं।

(३) भगवान् विष्णुकी नाभिसे उनकी योगशक्तिके द्वारा कमल

उत्पन्न हुआ और उसी शक्तिके द्वारा कमलसे ब्रह्मा प्रकट हुए।

(४) ब्रह्मा, विष्णु और शिव—ये तीनों भगवान्‌के ही पृथक्-पृथक् रूप हैं, भिन्न-भिन्न कार्योंके लिये स्वयं भगवान् ही अपनी योगशक्तिसे इन रूपोंमें प्रकट होते हैं। इनका स्वरूप साधारण मनुष्योंसे भिन्न, जैसा शास्त्रोंमें बताया है, वैसा ही होता है—यही मानना चाहिये। इनका प्रत्यक्ष दर्शन हो सकता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। आवश्यकता है श्रद्धा, प्रेम और साधनाकी। विष्णुकी चार भुजाएँ अन्य साधारण मनुष्योंसे इनकी विलक्षणता सूचित करनेके लिये हैं। इसी कारण भगवान्‌ने मनुष्योंके चार-चार हाथ नहीं बनाये। शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म—ये भगवान्‌के दिव्य हथियार और आभूषण उन्हींके अंश हैं तथा ये सब चेतन और अलौकिक हैं, मायामय नहीं हैं। इसी कारण इनको दिव्य कहते हैं।

(५) भगवान् श्रीकृष्णके मनुष्यरूपमें तो दो भुजाएँ ही थीं; पर जब किसीको वे अपना भेद बतानेके लिये परिचय देते, तब देवरूप दिखाते थे और उस समय उनके चार भुजाएँ होती थीं। अब भी भगवान् विष्णुके चार हाथ हैं और उन हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म भी हैं। साधारण मनुष्योंके चार हाथ न पहले ही थे और न अब ही हैं। आपने लिखा कि जब चार हाथ और शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म आदि इस समय किसीके नहीं हैं, तब पहले भी नहीं होने चाहिये, सो यह कोई नियम नहीं है। बहुत-सी ऐसी चीजें संसारमें भी भरी हुई हैं, जो

आजकल नहीं पायी जातीं और पहले थीं—जैसे कामधेनु, चिन्तामणि, पारस, राजहंस आदि। इसमें क्या आश्चर्य है।

(६) शेषनाग भगवान्‌के ही अंश माने जाते हैं, वे पातालमें निवास करते हैं। अपने शास्त्रोंमें जिस पातालका वर्णन है, वह अमेरिका नहीं है। वहाँ सूर्यका प्रकाश नहीं है। पृथ्वी गोलाकार है। उसका सब ओरका देश तो पृथ्वी ही है। उसे भूलोक कहते हैं। उसमें कोई पाताल नहीं है। उसके अंदर सात पाताल हैं, उसमें अनन्त भगवान् शेषनागजी निवास करते हैं।

(७) शेषनागके सहस्र फण हैं, यह बिल्कुल ठीक है। इसमें कोई असंभावनाकी बात नहीं है। उन्होंने अपने फणपर समस्त पृथ्वीको अपनी योगशक्तिसे धारण कर रक्खा है, इसका अभिप्राय यह है कि वे इसे अपनी ओर आकर्षित किये रहते हैं, जिससे यह आकाशमें टिकी हुई है।

(८) भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने जिस नागको नाथा था, उसका नाम कालिय था। वह पहले यमुनामें रहता था, पीछे भगवान्‌ने उसे रमणकद्वीपमें भेज दिया।

(९) महाभारत-युद्धमें भगवान् श्रीकृष्णने इसी वर्तमान सूर्य-को दिखाकर अर्जुनके द्वारा जयद्रथको मरवाया था। यह सूर्य वास्तवमें उस समय छिप नहीं गया था। छिपनेमें कुछ देर थी। भगवान् श्रीकृष्णने उसे अपने सुदर्शनचक्र-से ढाप लिया था। इस कारण लोगोंने समझ लिया कि सूर्य छिप गया। फिर उन्होंने अपना चक्र हटाया, तब सूर्य सबको दीखने लग गया।

(१०) भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुन और यशोदाको एवं भगवान् श्रीरामने काकभुशुण्डिको जो विश्वरूप दिखाया था, वैसा रूप भगवान् अब भी दिखा सकते हैं; पर उनके सिवा दूसरा कोई नहीं दिखा सकता और भगवान्का भक्त ही उसे देख सकता है, साधारण मनुष्य देख भी नहीं सकता।

(११) दशम द्वार किस जगह है। यह योगियोंसे पूछना चाहिये। सिरमें मानना निरर्थक कैसे है ? यह आप किस आधारपर लिखते हैं ?

(१२) नाड़ीद्वारा ब्रह्मको प्राप्त होना असम्भव नहीं है, क्योंकि ब्रह्म सर्वव्यापी है। अतः शुद्ध भाव होनेपर उसे अवश्य ही नाड़ीद्वारा पाया जा सकता है। कुण्डलिनी शक्ति योगशास्त्रोंमें जहाँ बतायी गयी है, वही ठीक है।

(१३) सूर्यकी किरणोंद्वारा सूर्यलोकमें पहुँचकर मनुष्य उसका भेदन करके सत्यलोकमें जा सकता है। वहाँ इस वर्तमान शरीरसे नहीं जाता, तेजोमय शरीरसे जाता है।

(१४) वेदोंके चार विभाग हैं। ईश्वरसे इनके प्रकट होनेमें शास्त्र ही प्रमाण हैं। इनका प्रचार सर्वप्रथम ब्रह्माके मुखसे हुआ था और फिर बीच-बीचमें लुप्त होनेपर महर्षियोंके हृदयमें भी प्रकट हुआ था और होता रहेगा।

(१५) सृष्टि न सुखसे उत्पन्न हुई और न दुःखसे। सुख-दुःख तो जीवोंके कर्मोंके फल हैं। सृष्टिकी उत्पत्ति तो भगवान्द्वारा उनकी योगशक्तिसे हुई है और वह जीवोंके कर्मोंका फल भुगतानेके लिये हुई है और होती रहती है।

(१६) ईश्वर प्राणीमात्रके हृदयमें अवश्य हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। उनके न दीखनेमें खास कारण श्रद्धा, प्रेम और ज्ञानका अभाव है।

(१७) योगियोंने हृदयकमलको अविनाशी पुरुषका स्थान माना है, सो उचित ही है; क्योंकि समस्त प्राणियोंके हृदयकमलमें ही भगवान्‌का निवास माना जाता है (देखिये गीता अध्याय १३ श्लोक १७, अध्याय १५ श्लोक १५ और अध्याय १८ श्लोक ६१)। आपका यह लिखना कि शरीरमें होना असम्भव है, सर्वथा भूल है। आपने लिखा कि आकाशमें है तो दीखता क्यों नहीं, सो यह भी प्रश्न नहीं बन सकता। क्या आकाश-की सभी चीजें हमें दीखती हैं ? हमारी दृष्टिकी शक्ति तो बहुत ही अल्प है, वह सूक्ष्म वस्तुओंको कैसे देख सकती है। आँखोंसे तो हम केवल अग्नि-तत्त्व और उसके बादकी चीजें—जल और पृथ्वी ही देख सकते हैं। हवा और आकाशको भी आँखोंसे तो नहीं देख सकते।

इस उत्तरसे आपको सन्तोष होना तो साधारण बात नहीं है; पर मैंने अपनी साधारण बुद्धिके अनुसार ही उत्तर दिया है।

[३४]

प्रेमपूर्वक हरिस्मरण ! आपका पत्र मिला, समाचार मालूम हुए। आपके प्रश्नका विस्तृत उत्तर देखना हो तो आप

'तत्त्व-चिन्तामणि प्रथम भाग' के 'कर्मका रहस्य' शीर्षक लेखमें कर्मविषयक विवेचन पढ़ें। उसमें प्रमाणसहित इस विषयपर विवेचन किया गया है।

आपकी शङ्काओंका उत्तर क्रमशः इस प्रकार है—

(१) प्राणियोंके जीवनकी अवधि और मृत्युका समय अवश्य ही भाग्यमें यानी प्रारब्धमें निश्चित होता है और उसके जीवनकी रक्षा भी उसके प्रारब्धसे ही होती है। बहुत परिस्थितियोंमें तो उसके निमित्त भी प्रारब्धसे निश्चित रहते हैं और बहुत परिस्थितियोंमें निमित्त निश्चित नहीं भी रहते हैं। एक जीवके साथ दूसरे जीवोंका प्रारब्ध-सम्बन्ध भी बहुत रहता है, नहीं रहता—ऐसी बात नहीं है। इसपर यह प्रश्न उठता है कि फिर प्रारब्ध और नवीन कर्मका निर्णय किस आधारपर किया जाय तो इसका उत्तर यह है कि मनुष्यके सिवा अन्य जीवोंके द्वारा या जड़ तत्त्वोंके निमित्तसे बिना किसी मनुष्य-प्रयत्नके जो मृत्युका निमित्त होता है और जिसकी मृत्यु होती है, उसके अपनी रक्षाका उपाय शक्तिभर करते रहनेपर भी मृत्यु नहीं टलती तो ऐसी मृत्यु तो सर्वथा प्रारब्धसे ही निश्चित होती है और वह निमित्त भी प्रारब्धनिर्मित होता है। पर कोई भी दूसरा मनुष्य किसीकी मृत्यु-में निमित्त बनता है तो उसपर विचार करना है। उसमें यह बात है कि निमित्त बननेवाले मनुष्यकी नीयतमें यदि कोई राग-द्वेष या दोष नहीं है, अपने कर्तव्यका पालन करते हुए ही वह किसीकी मृत्युमें निमित्त बनता है, तब तो उसका निमित्त बनना

प्रारब्धाधीन है । जैसे किसीको फाँसी देनेका हुक्म हुआ । उसको मारनेमें सरकारी जल्लाद निमित्त बनते हैं । अथवा कोई डाक्टर या वैद्य किसीकी रक्षा करनेकी चेष्टा करते हैं, पर उसका उल्टा परिणाम हो जानेसे उनके द्वारा किसीकी मृत्यु हो जाती है । इसी तरहकी दूसरी बातें भी समझ लेनी चाहिये । इसके सिवा जब मनुष्य राग-द्वेषके कारण या मोहमें पड़कर किसी जीवकी जान-बूझकर हिंसा करता है यानी उसको मारनेमें निमित्त बनता है, तब वह नवीन कर्म करता है, इसलिये वह उसके फलका भागी होता है । पर जो मारा जाता है, उसकी मृत्यु तो इस हालतमें भी प्रारब्धवश ही हुई समझनी चाहिये, केवल निमित्त उसे मारनेवाला जो मनुष्य हुआ, वह न होकर दूसरा हो जाता या वही होता तो जिस नीयतसे हुआ उस नीयतसे न होकर राग-द्वेषरहित दूसरे प्रकारसे हो जाता, उस हालतमें उसे नवीन कर्म लागू नहीं होता । इस प्रकार हर-एक कर्ममें समझ लेना चाहिये । सुख-दुःख-रूप फल भोगनेमें तो सर्वथा प्रारब्धकी प्रधानता है और नवीन कर्म करनेमें पुरुषार्थकी प्रधानता है । प्रारब्धके भोग तीन प्रकारसे होते हैं--

(क) अनिच्छासे-अर्थात् उसमें न तो भोगनेवालेकी ही कोई इच्छा या प्रयत्न होता है और न किसी दूसरे मनुष्य या अन्य प्राणीका ही प्रयत्न होता है; किंतु अपने-आप दैवी घटनासे जो सुख-दुःखोंका भोग होता है, वह अनिच्छा-से प्रारब्धका भोग है।

(ख) परेच्छासे—अर्थात् जिस भोगमें भोगनेवालेका कोई प्रयत्न नहीं होता; परन्तु किसी दूसरेकी इच्छा या प्रयत्नसे उसे वह सुख या दुःख मिल रहा है तो वह पर-इच्छासे उसके प्रारब्धका भोग है। इसमें जिसके प्रयत्नसे उसे सुख या दुःख होते हैं, वह यदि मनुष्येतर दूसरा जीव है तब तो उसका भी वैसा ही प्रारब्धका ही सम्बन्ध है; पर मनुष्य है तब यदि वह राग-द्वेषपूर्वक वैसा करता है तो नया कर्म करता है और अपने कर्तव्य-पालनके नाते न्यायपूर्वक करता है तो प्रारब्धभोग हो सकता है। इसका निर्णय करनेमें थोड़ी कठिनाई है।

(ग) स्वेच्छासे—अर्थात् जो सुख-दुःखका भोग मनुष्यको अपने ही प्रयत्नसे मिलता है, उसमें अधिकांश तो प्रारब्धका ही फल होता है। पर कहीं-कहीं नवीन कर्मका भी फल हो जाया करता है। इस रीतिसे विचार करनेपर सम्भवतः आपकी पहली शङ्काका समाधान हो जायगा।

(२) ज्यौतिष और योगके द्वारा जो भविष्यकी घटनाका पता लगाया जाता है, वह भी अच्छे और बुरे फल-भोगका ही पता लगाया जाता है; पुण्य और पापरूप नये कर्मका नहीं। जो कर्म प्रारब्धवश मनुष्यके द्वारा किये जाते हैं, उनसे पुण्य या पाप नहीं बनता। पुण्य-पाप तो राग-द्वेष-युक्त नवीन कर्मसे ही बनते हैं। बाकी सब बातोंका उत्तर ऊपरके उत्तरसे समझ लेना चाहिये, समझनेकी रीति ऊपर बतायी गयी है।

(३) ऊपर कह दिया गया है कि प्रारब्धवश किये हुए कर्म पुण्य-पाप नहीं होते। सब जगह निमित्त बनना नवीन कर्म

नहीं है। कहीं मनुष्य प्रारब्धसे निमित्त बनता है, कहीं नवीन कर्मसे। इसका निर्णय करनेका तरीका पहले प्रश्नके उत्तरमें बताया गया है।

(४) भगवान्‌का अर्जुनको निमित्त बनाना सर्वथा नवीन कर्मका द्योतक नहीं है, क्योंकि उसमें यह कहा गया है कि यदि तू युद्ध नहीं भी करेगा तो भी ये लोग अवश्य मरेंगे। अभिप्राय यह है कि वे अवश्य मरेंगे। यदि तू राग-द्वेषसे इनके मारनेमें निमित्त बनता तो नवीन कर्म यानी पुण्य-पापका भागी होता, परन्तु युद्ध करना क्षत्रियका धर्म है—इस न्यायसे अपना कर्तव्य पालन करते हुए निमित्त बनेगा तो पुण्य-पापका भागी नहीं होगा और तेरा यह कार्य नवीन कर्ममें सम्मिलित न होकर प्रारब्धभोगमें ही सम्मिलित हो जायगा। हृदयस्थ भगवान्‌की प्रेरणाको समझकर उसके प्रेरणानुसार किसी कर्ममें केवल निमित्तमात्र बनना तो एक प्रकारसे प्रारब्ध-भोग ही नहीं, उससे भी बढ़कर स्वयं भगवान्‌की तरह लोगोंको प्रारब्धका भोग करानेमें निमित्त बनना है। अतः ऐसा करनेवाला कर्मबन्धनमें नहीं पड़ता। इसी प्रकारका निमित्त बननेके लिये अर्जुनसे भगवान्‌ने कहा है। इस प्रकार निमित्त बनकर स्वधर्म-पालन करते हुए किसीको मारना न तो हिंसा है और न उससे पाप ही होता है।

यह मैंने अपनी साधारण बुद्धिके अनुसार लिखा है। यदि आपको संतोष हो जाय तो बड़ी अच्छी बात है। 'तत्त्व-चिन्तामणि' पढ़नेपर और भी सब बातें समझमें आ सकती हैं, फिर भी कुछ आवश्यकता समझें तो पुनः पूछ सकते हैं।

[३५]

सादर विनयपूर्वक अभिवादनके साथ हरिस्मरण ! आपका पत्र मिला। समाचार विदित हुए। आपके प्रश्नोंके उत्तर क्रमशः नीचे दिये जाते हैं—

(१) 'इस जन्ममें किये हुए कितने ही कर्मोंका फल इसी जन्ममें मिल जाता है।' इसके विरुद्धमें आपने जो कुछ लिखा, वह पढ़ लिया है। इसका विस्तृत उत्तर समझनेके लिये आप 'तत्त्व-चिन्तामणि प्रथम भाग' में 'कर्मका रहस्य' शीर्षक लेखको पढ़नेकी कृपा करें। आपने गीता अध्याय १८ श्लोक १२ के 'प्रेत्य' शब्दपर जोर दिया सो ठीक है। पर उसी श्लोकमें जो 'क्वचित्' शब्द है, उसपर ध्यान नहीं दिया। यदि कर्मोंका फल मरनेके बाद जन्मान्तरमें ही होता, वर्तमानमें नहीं होता तो पूर्वलिखित 'प्रेत्य' से ही काम चल जाता, 'क्वचित्' की क्या आवश्यकता थी ?

आपने सकाम कर्मोंके फलके विषयमें लिखा कि उनकी सिद्धि भी पूर्वकृत प्रारब्धसे ही होती है सो सर्वथा ऐसी बात नहीं है, कहीं-कहीं उसमें प्रारब्धका भी सम्बन्ध जुड़ जाता है, इसी कारण इस प्रकारका भ्रम हो जाता है। सुख-दुःखरूप कर्मफल प्रायः पूर्वजन्मकृत कर्मोंका ही भोगा जाता है, पर जो कोई उग्र कर्म होता है, उसका फल इसी जन्ममें भी हो जाता है। यदि ऐसा नहीं होगा तो इसी जन्ममें फल मिलनेके लिये जिन सकाम कर्मोंका शास्त्रोंमें विधान है, वह व्यर्थ होगा। इसके सिवा यज्ञद्वारा वर्षा होनेका विधान शास्त्रोंमें पाया जाता

है। गीता अध्याय ३ श्लोक १० से १५ तथा गीता अध्याय ४ श्लोक ३१ देखिये। वहाँ स्पष्ट कहा है कि 'यज्ञ न करनेवालेको यह वर्तमान लोक ही नहीं मिलता, फिर परलोककी तो बात ही क्या।' इसी प्रकार अध्याय ४ श्लोक ४० में कहा है कि 'संशयात्माके लिये न यह लोक है, न परलोक है और न सुख ही है।' अध्याय ५ श्लोक १९ में लिखा है 'कि जिनका मन समतामें स्थित है, उन्होंने इसी जन्ममें किये हुए साधनसे संसारको जीत लिया है।' इससे भी उनके इस जन्ममें किये हुए साधनका फल इसी जन्ममें होना सिद्ध होता है। चोरको चोरीकी सजा यदि न्याययुक्त यहाँ मिल जाय तो उसे फिर उसका दण्ड परलोकमें नहीं मिलता। पर आजकलके न्यायालयोंमें ऐसा नहीं होता, इसलिये उनको बचा हुआ दण्ड परलोकमें भोगना पड़ता है। गीता अध्याय १८ श्लोक १२ में जो 'प्रेत्य' शब्द है, वह उचित ही है; क्योंकि इस जन्ममें तो कोई खास कर्मका ही फलभोग होता है, शेष सब कर्मोंका फल तो जन्मान्तरमें ही भोगना पड़ता है। इस जन्ममें जो फल-भोग हो जाता है, उसके लिये तो कुछ लिखनेकी आवश्यकता नहीं, शेष कर्मोंके लिये 'प्रेत्य' शब्द है, अतः कोई विरोध नहीं है।

(२) एकादशी-व्रतके विषयमें पूछा सो यदि आपके नित्यकर्म और भजन-स्मरणमें बाधा आती हो तो ऐसी परिस्थितिमें दशमीके दिन सन्ध्याको भोजन कर लेना ही श्रेष्ठ है। यदि एकादशीको फलाहार कर लेनेसे ही काम चल जाता हो, साधनमें कोई अड़चन न आती हो तो फलाहार कर

सकते हैं, नहीं तो, अन्न भी खा सकते हैं। उपवासकी अपेक्षा साधनकी ही प्रधानता है।

(३) पञ्चमहायज्ञादिके विषयमें आपने लिखा सो मालूम हुआ। पञ्चमहायज्ञ करना बहुत ही उत्तम है, अवश्य ही करना चाहिये। सन्ध्यामें आचमन अवश्य करना चाहिये; क्योंकि आचमनसे अन्तःकरण शुद्ध होता है। बलिवैश्वदेवविधि-पत्रके विषयमें आपने चित्रगुप्तप्रेस और गीताप्रेसके दो नक्शे भेजे और उनमें कौन-सा ठीक है—यह बात पूछी, सो उसपर मेरा यह निवेदन है कि महर्षियोंने अपनी-अपनी परिपाटीके अनुसार कुछ-कुछ फेर-बदल करके अलग-अलग विधान किया है, पर लक्ष्य प्रायः एक ही है। अतः आप किसी भी पद्धतिसे करें, कोई हानि नहीं है। मुझे तो गीताप्रेसवाली पद्धति ही अधिक रुचिकर है, क्योंकि मैं उसीके अनुसार किया करता हूँ।

सूतक-पातकमें जो अन्नसे होनेवाला कार्य है, वह मानसिक करनेके लिये इसलिये लिखा गया है कि उससे अन्तःकरणकी शुद्धि होती है तथा करनेका अभ्यास भी बना रहता है और अन्तमें एक साथ कर देना इसलिये ठीक है कि प्राणियोंका हक भी न मारा जाय और कर्म भी लुप्त न हो। रही बीमारीकी बात, सो बीमारीमें तो स्वयं न कर सके तो किसी दूसरेसे करवा लेना चाहिये।

आपने लिखा कि जब बाहर जाता हूँ, तब होटल (वासा) में भोजन करना पड़ता है, सो ऐसा न करके यदि अपने हाथसे बनाकर और बलिवैश्वदेव करके खाया जाय

तो अच्छा है या वहाँपर कोई जान-पहचान या कुटुम्बवाला हो तो अपने किसी प्रेमी सद्गृहस्थके घरपर खाना ठीक है। भोजनकी शुद्धि अवश्य होनी चाहिये। उसके घरपर वलिवैश्वदेव होता हो तब तो ठीक है, नहीं होता हो तो आपको कर देना चाहिये।

आपने लिखा कि देवयज्ञ भी प्रातःकाल ही हो जाना चाहिये, सो ठीक है; अग्निहोत्र करना देवयज्ञ है। वह कार्य तो आप प्रातःकाल कर ही सकते हैं, उससे तो रसोईका कोई सम्बन्ध नहीं है। रही वलिवैश्वदेवकी बात सो वह कर्म तो भोजनके समयका ही है, उसे सवेरे करनेका विधान नहीं है। वह तो रसोई तैयार होनेपर भोजन करनेके पहले करनेका कर्म है।

(४) गीता अध्याय १७ श्लोक २२ के अनुसार तामस दान करनेकी अपेक्षा न करना अच्छा है, यह मानना ठीक नहीं। कर्मका त्याग नहीं होना चाहिये। उसमें जो दोष हो उसका त्याग होना चाहिये। अतः तामस-दानको सात्त्विक बनाना चाहिये।

(५) 'श्रीप्रेमभक्तिप्रकाश' में लिखे अनुसार मानसपूजाके विषयमें आपने जो यह लिखा कि 'यह पूजा तो उसके लिये मालूम होती है, जिसे भगवान्‌के दर्शन होते हों' सो यह बात नहीं है। यह पूजा हरेक साधक कर सकता है। आपने 'पत्रं पुष्पं फलं तोयम्' इस श्लोककी बात लिखी। इसमें भगवान्‌ने अपने सभी प्रकारके भक्तोंपर दया की है। केवल निर्धनोंका ही नहीं, धनवान् प्रेमी भक्तका

दिया हुआ भी पत्र-पुष्पादि भगवान् स्वीकार करते हैं। भगवान् वस्तुके भूखे नहीं हैं, वे तो प्रेमके भूखे हैं। उनका भक्त प्रेमसे जो कुछ भी देता है, उसे ही वे स्वीकार कर लेते हैं। बिना प्रेमके बड़ी-से-बड़ी चीज भी स्वीकार नहीं करते। आपने मानसिक पूजनको निरर्थक समझा और मानस-पूजा करनेवालेको लपोड़शङ्ख (धोखेबाज) की उपमा दी सो यह ठीक नहीं है। शास्त्रोंमें लिखा है कि 'भावग्राही जनार्दनः' अर्थात् भगवान् भावको ग्रहण करनेवाले हैं। वहाँ वस्तुकी कोई कीमत नहीं है, वे तो अपने भक्तका भाव ही देखते हैं।

एक भक्तगाथा प्रसिद्ध है। एक राजपूत सेनाके साथ घोड़ेपर चढ़ा हुआ जा रहा था। रास्तेमें मानसिक पूजाका समय हो गया। वह घोड़ेपर चढ़ा हुआ ही भगवान्‌की मानसिक पूजा करने लगा। दूसरे सैनिकोंने राजाके पास उसकी शिकायत कर दी कि 'महाराज! देखिये, यह सैनिक घोड़ेपर चढ़ा हुआ आँख बंद करके चलता है, यह क्या युद्ध करेगा।' महाराजने उसके पास जाकर देखा तो बात वैसी ही मालूम हुई। महाराजने पीछेसे उसको जोरसे हिलादिया। घुड़सवार झिझका। उसकी आँख खुली। उस समय वह भगवान्‌के भोग लगा रहा था; थालमें कढ़ी-भात आदि भोजन-सामग्री रखकर मानसिक भोग लगा रहा था। झिझकनेसे उसके हाथमें धक्का लगा और थाल गिर पड़ा। लोगोंने देखा कि एक थाल नीचे गिर पड़ा है और भोजन इधर-उधर बिखर गया है। राजासाहबको

बड़ा आश्चर्य हुआ। उस राजपूतसे घटनाका रहस्य पूछा गया तो उसने संकोचके साथ सच्ची-सच्ची बात कही। राजाने उसको घरपर लौटा दिया और उसकी जीविकाका प्रबन्ध कर दिया। यह घटना बहुत पुरानी नहीं है। कुछ हीं वर्षों पहले राजपूतानाके बीकानेर राज्यकी बात है। राजपूतका नाम किशनसिंह था। गाँव गारबदेसर बताया जाता है।

अतः इस विषयमें आपको सन्देह नहीं होना चाहिये। भगवान् ही अपने भक्तोंके भावको समझते हैं, दूसरा क्या जाने। यह तर्कका विषय नहीं है।

(६) आपने इष्टदेवके विषयमें पूछा सो इष्टदेव माननेका यह अभिप्राय नहीं है कि दूसरे देवोंको मानना ही नहीं या उनका जप, ध्यान, पूजा आदि करना ही नहीं। पतिव्रता स्त्रीका इष्टदेव पति ही होता है पर पतिके माता, पिता, बन्धुवर्ग और अतिथिकी सेवा भी पतिकी प्रसन्नता लिये करना उसका अवश्यकर्तव्य हो जाता है। इस प्रकार किसी एकको इष्टदेव मानकर औरोंको उसीके अंश या कुटुम्बी मान लेनेपर राग-द्वेषके लिये कोई स्थान नहीं रहता। अतः गीता, विष्णुसहस्रनाम, भागवत, दुर्गास्तोत्र, दुर्गाष्टक आदि सभीका पाठ कर सकते हैं, यह भी शिवकी ही भक्ति है। भगवान् शिव इससे बड़े प्रसन्न होते हैं;क्योंकि भगवान् विष्णुको तो वे स्वयं अपना इष्टदेव मानते हैं और दुर्गा शिवकी अर्द्धाङ्गिनी हैं, गणेश उनके पुत्र हैं; फिर उनकी भक्तिसे भगवान् शिव क्यों नहीं प्रसन्न होंगे। दूसरे प्रकार-से सभी रूपोंमें भगवान् शिव ही प्रकट हुए हैं। इस दृष्टिसे

भी उनकी भक्ति भगवान् शिवकी ही भक्ति है, फिर इसमें राग-द्वेषकी गुंजाइश ही कहाँ है। × × ×

[३६]

प्रेमपूर्वक हरिस्मरण! × × ×। आप सात्त्विक व्यापार-में यथाशक्ति लग गये सो बहुत ही अच्छी बात है।

आपने पूछा कि अमूल्य वस्तु क्या है सो वह परब्रह्म पुरुषोत्तम सर्वेश्वर सर्वशक्तिमान् भगवान् ही अमूल्य वस्तु हैं। इनकी प्राप्ति किसी भी मूल्यसे अर्थात् संसारकी बड़ी-से-बड़ी वस्तुसे नहीं हो सकती; क्योंकि समस्त जगत् तो इनके एक अंशमें स्थित है, फिर उसमेंकी कोई भी वस्तु उनका मूल्य कैसे हो।

दूसरी बात आपने यह पूछी कि 'वह अमूल्य वस्तु किस कार्यसे मिल सकती है और उसे प्राप्त करनेकी इच्छावाले मनुष्यको अपना जीवन किस कार्यमें लगाना चाहिये' सो ऊपर बतायी हुई अमूल्य वस्तु अर्थात् श्रीभगवान् केवलमात्र एक प्रेमसे ही मिल सकते हैं। गीता अध्याय ११ श्लोक ५४ में भगवान्ने स्पष्ट कहा है कि 'केवलमात्र अनन्य प्रेमसे ही मैं प्रत्यक्ष दर्शन दे सकता हूँ, तत्त्वसे जाना जा सकता हूँ और साधक मुझमें प्रवेश भी कर सकता है।' अतः जिस साधनसे भगवान्में अनन्य प्रेम हो, वही साधन अमूल्य कार्य है, उसीमें मनुष्यको अपना जीवन लगाना चाहिये। अनन्य प्रेम होनेका उपाय है भगवान्का निरन्तर स्मरण अर्थात् उनके स्वरूपको हर समय याद रखना; उनके नामका जप और कीर्तन करना, उनको सर्वत्र व्याप्त समझकर सब प्राणियोंकी सेवाद्वारा

उनकी सेवा करना। उन्हींकी आज्ञाके अनुसार उन्हींके लिये उन्हींके दिये हुए इन्द्रियादि साधनोंसे तथा अन्य सामग्रियोंसे स्वार्थ छोड़कर उनको सुख पहुँचानेकी चेष्टा करना अर्थात् अपने मन, वाणी, शरीरसे जो कुछ भी क्रिया हो, वह भगवान्के लिये ही हो और अपने धन-जनको भी उन्हींके काममें लगा दिया जाय। यही अमूल्य कार्य है।

आपने लिखा कि 'साधनमें जो भूलें होती हैं, उनका सुधार करनेके लिये आपसे भेंट करनी पड़ेगी' सो ठीक है; किंतु भगवान्पर भरोसा रखकर साधन करनेवालेकी समस्त भूलें भगवान् स्वयं निकाल देते हैं। ××××।

[३७]

महोदय ! प्रेमपूर्वक हरिस्मरण। आपने लिखा मेरे दो पत्रोंका तो उत्तर मिला, उसके बादके पत्रोंका उत्तर नहीं मिला—सो इसका कारण समझमें नहीं आया। मेरे पास जितने पत्र आते हैं, उनका उत्तर प्रायः अवश्य दिया जाता है।

मेरा पता बाँकुड़ेका तो स्थायी है ही। वहाँ दिये हुए पत्र मैं जिस समय जहाँ रहता हूँ, वहीं भेज दिये जाते हैं। यहाँ दो-तीन महीने ठहरनेकी आवश्यकता तो है पर कितने दिन ठहरना होगा इसका निश्चय नहीं हुआ है। यहाँका पता तो गीताप्रेस है ही।

आपने लिखा कि 'मैं आपको गुरु मानता हूँ' सो यह ठीक नहीं है। मैं किसी प्रकार भी अपनेको गुरु बननेका अधिकारी नहीं मानता।

आपका श्रीहनूमानूजीमें बहुत प्रेम है सो बहुत अच्छी बात है। हनूमानूजी भगवानूके परम भक्त हैं, उनमें प्रेम करके उनसे सांसारिक वस्तु माँगना बहुत भूल है। उनसे तो भगवान् श्रीरामकी विशुद्ध भक्तिका ही वरदान माँगना चाहिये।

अन्य देवी-देवताओंकी उपासना करके भी भगवान्‌की भक्ति ही माँगनी चाहिये। सब प्रकारके झंझटोंसे शान्ति-लाभ करनेका उपाय एकमात्र संसारसे विरक्त होकर भगवानूमें अनुराग होना ही है।

आपके प्रश्नोंका उत्तर क्रमसे इस प्रकार है—

(१) किसी कार्यकी पूर्तिके लिये भजन किया जाता है और वह कार्य सिद्ध नहीं होता तो भी वह भजन जैसा होता है, उसके अनुसार उसका फल अवश्य मिलता है। क्या फल मिलता है--इसका पता तो फल देनेवाले भगवानूको ही है।

(२) धन देकर दूसरोंसे भजन करानेवाले धनीको उस कर्मका उचित फल अवश्य मिलता है और कर्म करने-वालेके अन्तःकरणमें भी उसके संस्कार जमते हैं। उसकी प्रकृतिपर उसका बहुत प्रभाव पड़ता है।

(३) हनूमानूजीकी या अन्य देवी-देवताओंकी भक्तिका फल मनोकामनाकी पूर्णसिद्धि या चित्त विचलित हो जाना होता है, ऐसा कोई खास नियम नहीं है। वह कर्म जिस श्रेणीका होता है, वैसा ही फल मिलता है।

(४) चौबीस वर्षकी उम्रके बाद भी प्रायश्चित्त करके वैश्य बालक यज्ञोपवीत ले सकता है; क्योंकि ऐसा करनेसे

यज्ञोपवीतकी परम्परा चालू हो जायगी । भक्ति तो विना यज्ञोपवीतके भी की जा सकती है, पर सन्ध्या-गायत्री और वेद-पाठमें उसका अधिकार नहीं होता ।

(५) सन्ध्या और गायत्री-जपका माहात्म्य बहुत है, इससे मनुष्य संसारबन्धनसे सदाके लिये छूटकर भगवान्‌को प्राप्त कर सकता है ।

[३८]

आपका पत्र मिला । समाचार मालूम किये । आपके नेत्रों-की दृष्टि यदि कमजोर हो गयी है और डाक्टर ऐनकके लिये राय देते हैं तो आपके लिये ऐनक लगा लेना ही ठीक है । और कोई अन्य उपाय तो मुझे मालूम नहीं है ।

पूर्वकृत कर्मोंका जो सुख-दुःख, हानि-लाभ, जय-पराजय आदि फल है, वह कर्मफल-भोग है । और जो पुण्य-पापरूप नया कर्म किया जाता है, वह स्वतन्त्र कर्म है । सर्प, बिच्छू आदि जो मनुष्यको काटते हैं तो इसमें सर्प-बिच्छूका कोई दोष नहीं है । यदि मनुष्य उनको मारता है तो वह दोषका भागी होता है; क्योंकि मनुष्यको कर्म करनेकी स्वतन्त्रता भी है ।

आत्माका शरीरसे अज्ञानजनित सम्बन्ध प्रतीत होनेसे यह बल-बुद्धि आदिका आत्मामें आरोपमात्र है । शरीर विनाशी है और बल-बुद्धि भी विनाशी हैं । बुद्धि अन्तःकरणमें है और बल शरीरमें होता है । ये सभी विनश्वर हैं । वास्तवमें आत्मामें ये नहीं हैं । केवल अज्ञानसे प्रतीतिमात्र होती है ।

वास्तवमें जीव नित्य, चेतन और आनन्दरूप है ।

ईस्वर अंस जीव अविनासी । चेतन अमल सहज सुखरासी ॥

और शरीर नाशवान्, क्षणभङ्गुर, दुःखरूप एवं अनित्य है। इनका यही परस्पर भेद है। जीव और देहमें देह-देहीका सम्बन्ध है। देह व्याप्य है, आत्मा व्यापक है। इसे व्याप्य-व्यापक-सम्बन्ध भी कहा जा सकता है। और वास्तवमें तो जड़ और चेतनका कभी सम्बन्ध होता ही नहीं। अज्ञानसे सम्बन्ध प्रतीत होता है।

भगवान् श्रीकृष्णके आत्मा और देहमें वेदान्तकी दृष्टिसे कोई भेद नहीं है। दोनों ही विज्ञानानन्दमय हैं। भक्तिकी दृष्टिसे श्रीकृष्ण आत्मा हैं और उनकी दिव्य शक्तिका कार्य उनका लीलावपु है। उनके देह और आत्मामें शक्ति-शक्तिमान्‌का सम्बन्ध है।

अज्ञानी जीवकी प्रकृति राग-द्वेषयुक्त होती है, ज्ञानीकी प्रकृतिके साथ राग-द्वेष नहीं रहते, इसलिये ज्ञानीके कार्य शुद्ध होते हैं और अज्ञानी जीवके आसक्तियुक्त होनेसे अशुद्ध होते हैं। इन राग-द्वेषोंका त्याग करनेसे जीवका उद्धार हो सकता है। राग-द्वेष ही बाँधनेवाले हैं। राग-द्वेषरहित कर्म मुक्ति देनेवाले हैं। गीता अध्याय २ श्लोक ६४-६५ देखिये। जो कुछ होता है, ईश्वरकी प्रेरणासे होता है। यह ठीक है। पर इसमें एक बात यह समझनेकी है कि जो सुख-दुःखरूप फल भोगता है, वह तो अपने कर्मका फल भोगता है। उसे अपना प्रारब्ध समझकर भोगना चाहिये, किसीको दोष नहीं देना चाहिये। और जो मनुष्य कष्ट देता है, वह नवीन पाप करता है; क्योंकि ईश्वरके यहाँ जीवके कर्मोंका फल भुगतानेके

लिये स्वयं ही सारी व्यवस्था है फिर वह बीचमें पड़कर ईश्वरकी आज्ञाके विरुद्ध कर्म करता है तो दण्डका भागी होता है।

इस समय जो खाद्यकी कमीसे कष्ट मिल रहा है, अशान्ति हो रही है, इसमें सरकारका दोष तो है ही, पर प्रजाका भी दोष है। यदि प्रजाका कोई दोष न होता तो उसे बिना अपराध दण्ड क्यों मिलता। इसीसे प्रकट है कि यह प्रजाके पूर्वकृत पापोंका फलभोग है।

गृहस्थजीवनमें पूर्ण सुखी होनेका उपाय पूछा सो भगवान्‌के नामका जप, उनके रूपका ध्यान, दुखियोंकी और पूज्यजनोंकी सेवा, मन-इन्द्रियोंका संयम, सत्पुरुषोंका सत्सङ्ग और सत्-शास्त्रोंका मनन—इनको काममें लानेसे जीवन सुखमय हो सकता है।

---

[३१]

आपका पत्र मिला, समाचार विदित हुए।

(१) प्रश्न—आपने पूछा कि 'दिव्य शरीरमें कौनसे तत्त्व सम्मिलित होकर प्रादुर्भाव होता है ?'

उत्तर—दिव्य शरीर दो प्रकारके होते हैं। एक देवताओंका, दूसरा भगवान्‌का। देवताओंके शरीरमें तेजस्-तत्त्वकी प्रधानता होती है; जैसे चन्द्रमाका स्वरूप होता है, वह भी उसी तरहकी धातुका होता है। भगवान्‌का दिव्य शरीर केवल चिन्मय होता है। स्वयं सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा ही उस परम दिव्य रूपमें प्रकट होते हैं।

(२) आपने पूछा कि जितने अवतार हुए हैं—उनमें दिव्य शरीर किन-किनका एवं पाञ्चभौतिक किन-किनका था। सो इस बातका हमें पता नहीं है।

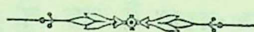
(३) आपने पूछा कि दिव्य एवं पाञ्चभौतिक शरीरोंमें क्या अन्तर है ? सो पाञ्चभौतिक स्थूल शरीर तो पाँच भूतोंका, सूक्ष्म शरीर सतरह तत्त्वोंका एवं कारण-शरीर एक तत्त्वका होता है। प्रकृतिसहित सब चौबीस तत्त्व माने गये हैं। इनकी व्याख्या गीता-तत्त्वाङ्क अध्याय १३ के ५ वें और २० वें श्लोककी टीका और टिप्पणीमें देखनी चाहिये। और देवताओंके शरीर भी मायिक होनेके कारणसे पाञ्चभौतिक ही हैं, किन्तु तेजस्-तत्त्व प्रधान होनेके कारण औरोंकी अपेक्षा दिव्य समझे जाते हैं।

(४) आपने भगवान् श्रीराम और श्रीकृष्णके अवतारके बारेमें पूछा सो भगवान् श्रीराम और श्रीकृष्णके जो अवतार हुए हैं—उनके शरीर जो लोगोंमें दीख रहे थे, वे मायिक-से दीखनेपर भी अनामय और शुद्ध थे; किन्तु वे अपने प्रेमी भक्तोंको प्रकट होकर जिस अपने दिव्य स्वरूपका दर्शन देते हैं, वह स्वरूप तो केवल चेतन ही हुआ करता है; किन्तु साधारण पुरुषोंको उस दिव्य शरीरके दर्शन नहीं होते हैं; क्योंकि भगवान् अनधिकारियोंके लिये मायाका पर्दा डाले रहते हैं। जैसे गीतातत्त्वाङ्क अध्याय ७ के २५ वें श्लोककी व्याख्यामें बतलाया है। और भगवान्‌ने जो गीताके दूसरे अध्यायके १२ वें श्लोकमें बतलाया है कि 'न तो ऐसा ही है कि किसी कालमें मैं नहीं था और न ऐसा ही है कि किसी कालमें तू और ये राजालोग नहीं थे और न ऐसा ही है कि इससे आगे

हम नहीं होंगे ।' सो इसमें आत्माकी नित्यता एवं जन्मकी परम्परा सिद्ध की गयी है । इससे यह समझना चाहिये कि लोगोंका जो जन्मना-मरना है, वह तो साधारण है; किन्तु भगवान्‌का जो जन्म है, वह लोगोंके जन्मकी अपेक्षा अलौकिक है । इस अलौकिकताका वर्णन गीतातत्त्वाङ्क अ० ४ श्लोक ६ और ९ की व्याख्यामें देखना चाहिये । दूसरे अध्यायके २७ वें श्लोक-में जो जन्मना-मरना नित्य लिखा है, यह भगवान्‌का सिद्धान्त नहीं है । यह मान्यता अर्जुनपर दूसरे ही सिद्धान्तके अनुसार आरोप करके यह बात बतलाते हैं कि 'यदि तू आत्माका जन्मना-मरना नित्य माने तो भी तुझे शोक करना उचित नहीं है ।' यह बात गीतातत्त्वाङ्क अ० २ के २६ वें एवं २७ वें श्लोककी व्याख्या-में देखनेसे ठीक समझमें आ सकती है । अध्याय ४ के '५ वें श्लोकमें जो भगवान्‌ने अपने बहुत जन्म बतलाये हैं, वे साधारण मनुष्योंके जन्मकी अपेक्षा विलक्षण और दिव्य हैं । गीतातत्त्वाङ्क अध्याय ४ के ६ ठे एवं ९ वें श्लोकके अर्थमें देखना चाहिये । गीता अध्याय ४ के ७ वें और ८ वें श्लोकका उदाहरण देकर जो आपने पूछा कि चारों युगोंमें भगवान्‌का कितनी बार अवतार होता है सो साधारणतया तो मुख्य दस अवतारोंका उल्लेख पुराणोंमें आता है, किन्तु किस युगमें कितने अवतार होने चाहिये, इसका कोई नियम नहीं है, भगवान् जिस समय जैसा उचित समझते हैं, अवतार धारण करते हैं ।

(५) आपने पूछा कि ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश आदि जो देवता हैं, इनके शरीरोंमें और अवतारोंमें भी भेद है क्या ?

उत्तर--भगवान् ब्रह्मा, विष्णु और महेशके जो शरीर हैं, वे अवतारोंकी ही भाँति भगवद्देह हैं।



[४०]

प्रेमपूर्वक सादर हरिस्मरण ! आपका पत्र यथासमय मिला, समाचार विदित हुए।

ईश्वर और जीव एक है या दो--इस विषयमें आपने मेरी सम्मति प्रमाणसहित माँगी, सो आपके प्रेम और विश्वासकी बात है। यह विषय वास्तवमें बहुत ही जटिल है, ऋषियोंमें भी मतभेद पाया जाता है। श्रुति और स्मृतियोंके प्रमाण भी दोनों बातोंको पुष्ट करनेवाले यथेष्ट मिलते हैं। उपनिषदोंमें जगह-जगह अद्वितीय ब्रह्मका प्रतिपादन किया गया है और उसीको सम्पूर्ण जगत्का अभिन्ननिमित्त-उपादानकारण बताया गया है। किन्तु ऐसा होते हुए भी जीव और ईश्वरका भेद प्रतिपादन करनेवाली श्रुतियाँ भी कम नहीं हैं। विचार करनेपर यही समझमें आता है कि निर्गुण निराकार ब्रह्मकी अद्वैतभावसे उपासना करनेवालोंके लिये आत्मा और परमात्मामें अभेद मानना ही उपयुक्त है और सेवक-सेव्य-भावसे सगुण ईश्वरकी भक्ति करनेवालोंके लिये नित्यभेद मानना ही उपयुक्त है। दोनों ही मार्ग वेद-शास्त्रप्रतिपादित हैं। दोनोंका फल सब प्रकारके दुःखोंसे छूटकर परमात्माको प्राप्त हो जाना है। अतएव साधक किसी भी एक मार्गका अवलम्बन करके चल पड़े, यही उसके लिये श्रेयस्कर है। वास्तवमें तो भगवान् द्वैत और अद्वैत दोनोंसे ही परे हैं। उन्हें न 'एक' कह सकते और न 'दो' ही। वे सबसे

अतीत भी हैं और सर्वरूप भी हैं। अतः उनके विषयमें साधक जो कुछ भी धारणा करता है, वही ठीक है। ऐसा होते हुए भी मेरी समझमें भेदोपासना करनेवाले मनुष्यके लिये यही मानना ठीक है कि जीव ईश्वरका दास है, ईश्वर जीवका स्वामी है। जीव अल्पज्ञ है, ईश्वर सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् है। जीव मायाके वशमें है, ईश्वर मायाका प्रेरक और अधिपति है—माया उसकी दासी है। अतः ईश्वर और जीव एक नहीं है। ईश्वर ही एक है, जीव नाना हैं। वे अपने-अपने कर्मोंके अनुसार नाना योनियोंमें घूम-घूमकर कर्मोंका फल भोग रहे हैं। भगवान्‌की भक्तिसे ही जीव इस संसार-चक्रसे छुटकारा पा सकता है।

जीव और ईश्वर दो हैं, इसका प्रमाण आपको देखना हो तो श्वेताश्वतरोपनिषद्, कठोपनिषद् और छान्दोग्योपनिषद्‌में जगह-जगह देख सकते हैं। ब्रह्मसूत्रमें भी इसका अत्युत्तम निर्णय किया गया है। गीतामें भी भगवान्‌ने कहा ही है—

'ईश्वर सभी प्राणियोंके हृदयमें स्थित है, वही अपनी माया-से सबको उनके कर्मानुसार घुमा रहा है। (१८। ६१) तू सब प्रकारसे उसीकी शरण ग्रहण कर। उसीकी कृपासे परम शान्ति-को और सनातन स्थानको प्राप्त करेगा। (१८। ६२) इत्यादि।'



[४१]

सादर प्रणाम और प्रेमपूर्वक हरिस्मरण। आपका पत्र यथासमय मिला। समाचार मालूम हुए। आपने अपने पत्रमें जगह-जगह मुझे गुरु शब्दसे सम्बोधित किया है, यह बहुत ही अनुचित है। ऐसा भूलकर भी कभी नहीं करना चाहिये; क्योंकि

मेरा न तो गुरु बननेका अधिकार है, न मुझमें योग्यता ही। आप जानते ही होंगे कि मैं वैश्यजातिका एक साधारण मनुष्य हूँ और आप ब्राह्मण हैं । अतः आप ही सब प्रकारसे मेरे पूज्य हैं।

इतनेपर भी आप जो मुझसे भगवत्-विषयक लाभ उठानेकी आशा रखते हैं और मुझसे मिलनेके लिये व्यग्र रहते हैं--यह आपके विश्वास और प्रेमकी बात है, इसके लिये मैं आपका आभारी हूँ।

राजा साहब अपने परिवारसहित अपने पुरोहितसे भी अधिक आपपर विश्वास करते हैं और आपको मानते हैं—इसे प्रकारान्तरसे भगवान्‌की ही प्रेरणा समझकर अपने मनमें किसी तरहका अभिमान न आने देना अच्छा है। सांसारिक मान-बड़ाई यदि प्रिय न लगे तो इसमें भगवान्‌की परम दयाका अनुभव करके भगवान्‌के प्रेममें विह्वल होना चाहिये और जोरोंसे भगवत्स्मरणमें लगे रहना चाहिये।

आपने मेरे पास रहनेकी और मेरे दर्शनोंकी इच्छा प्रकट की, सो आपके प्रेमकी बात है। दर्शनोंकी इच्छा तो भगवान्‌की करनी चाहिये । मैं तो साधारण मनुष्य हूँ। मेरे दर्शनोंमें क्या रक्खा है । पास रहना या मिलना प्रारब्धके वशकी बात है। जब जहाँका संयोग होता है, वहीं मनुष्यको रहना पड़ता है। अतः यह किसीके हाथकी बात नहीं है। भगवान् ही एक ऐसे हैं, जो कि एक साथ अनेक जगह प्रकट होकर भक्तके पास रह सकते हैं और दर्शन दे सकते हैं। अतः ऐसी प्रार्थना भगवान्‌से ही करनी चाहिये।

आपने लिखा कि 'मेरा यह दृढ़ निश्चय है, आपकी दयासे

मेरा इस महाभयानक भवसागरसे उद्धार हो जायगा' सो ऐसा निश्चय आपको भगवान्‌पर करना चाहिये । वे सर्वसमर्थ हैं, निश्चय करनेके योग्य हैं । भगवान्‌पर भरोसा करके उनकी शरण ग्रहण करनी चाहिये, अपने साधनका अभिमान नहीं करना चाहिये । जिनमें साधनका अभिमान नहीं होता, जो अपनेको दीन, हीन, मलिन समझते हैं और भगवान्‌की शरणमें चले जाते हैं, उन्हींको पतितपावन भगवान् अधिक अपनाते हैं। यह दृढ़ विश्वास रखना चाहिये कि भगवान् विद्या, बुद्धि, बल, साधन, आचरण, रूप, जाति आदि कुछ नहीं देखते हैं। वे देखते हैं केवल कपटरहित सच्ची दीनता, आतुरता एवं सच्चा विश्वास ।

आपने लिखा कि 'मेरा समस्त समय दूसरोंके लिये पूजा-पाठ और अनुष्ठान करनेमें बीत जाता है । यही मेरी जीविका है।' सो इस विषयमें मेरी राय ऐसी है कि यदि हो सके तो आप इस जीविकाको छोड़कर लोगोंको निष्काम भावसे भगवत्-विषयक शास्त्रोंका अभ्यास कराकर या भगवान्‌की कथा-वार्ता सुनाकर सात्त्विक भावसे अपने-आप प्राप्त हुए द्रव्यसे ही जीविका-निर्वाह करें और अपने अमूल्य समयको भगवान्‌के ही लिये उनके भजन-स्मरणमें व्यतीत करें । जीविकाका भार प्रारब्धपर छोड़ दें । शरीर-निर्वाह तो किसी तरह हो ही जायगा, उसकी क्या चिन्ता है।

[४२]

प्रेमपूर्वक हरिस्मरण । आपका पत्र यथासमय मिला, समाचार विदित हुए । अवकाश न मिलनेके कारण उत्तर

देनेमें कुछ विलम्ब हुआ है। इसके लिये मनमें किसी प्रकारका दुःख नहीं करना चाहिये।

आपने बालकपनके वैराग्य और भगवत्प्रेमकी बातें लिखीं सो बहुत अच्छी बात है। भगवान्‌की परम दयासे ही ऐसा सौभाग्य मिलता है।

इसके सिवा आपने अपने जीवनकी दूसरी-दूसरी घटनाओं-का दिग्दर्शन कराया, यह भी मालूम हुआ। भगवान्‌से सांसारिक सुखके लिये किसी अंशमें भी कामना न करना सब प्रकारसे उत्तम और परम श्रेयस्कर है।

इस समय आप चर्खासङ्घके विद्यालयमें लड़कोंको पढ़ा रहे हैं, सो बड़ी अच्छी बात है। आप लड़कोंको औद्योगिक और धार्मिक शिक्षाके साथ-साथ श्रीरामनामकी लगन लगा रहे हैं—यह पढ़कर बड़ी प्रसन्नता हुई। यह बहुत अच्छा काम आप कर रहे हैं।

आपने अपनेद्वारा पाप बननेकी बात लिखी सो आपकी सरलता है। पापोंका पश्चात्ताप तो वैराग्य और भजनमें सहायक होता है। पर पापोंसे किसी प्रकार भजन या वैराग्यमें सहायता नहीं मिलती। पाप-वासना तो हर प्रकारसे मनुष्यका पतन करनेवाली है। पाप बननेके बाद यदि सच्चा पश्चात्ताप होता है तो इसमें अवश्य ही भगवान्‌की दया भरी हुई है और यह पूर्वकृत भगवद्भजनका प्रभाव है। भगवान् कभी भी किसीका अज्ञान दूर करानेके लिये उससे पापकर्म करवावें—यह सम्भव नहीं है। भगवान् तो हर समय पापोंसे हटानेके लिये ही प्रेरणा करते हैं। मनुष्य कुसङ्ग और आसक्तिवश पाप कर बैठता है। हाँ, पश्चात्तापमें अवश्य भगवान्‌की कृपा है।

भगवान्‌की दयासे उनका रहस्य और नयी-नयी अनुभूतियाँ आपको प्राप्त हुईं सो अच्छी बात है। आपको चिन्मय प्रकाशमान स्वरूप अपने चारों ओर दिखायी देता है—यह भी शुभ लक्षण है। पर यह निर्गुण ब्रह्मके असली दर्शन नहीं हैं। निर्गुण ब्रह्म इन्द्रियोंका या मनका विषय नहीं है। आपके मनमें जो भगवान् श्रीराम-कृष्णके दर्शनोंकी लालसा बढ़ी हुई है, सो बहुत ही अच्छी बात है। इसे अधिक-से-अधिक बढ़ानेकी आवश्यकता है।

आपने लिखा कि 'कभी-कभी ऐसे कड़वे (पापपूर्ण) अनुभव आते हैं, जिनके स्मरणमात्रसे नरक प्राप्त होता है।' इसमें आप किसी अंशमें भी माताका यानी भगवान्‌का हाथ समझते हैं तो यह आपकी भूल है। यह सब करतूत कामासक्त पाजी मनकी है, वही पुरानी वासनाको हरी-भरी करके मनुष्यको विचलित करता रहता है। आप ऐसे अवसरपर रोते हैं—यह बहुत अच्छी बात है। भगवान्‌से प्रार्थना करनेपर सब विकार शान्त हो जाते हैं और पहलेसे भी अधिक लगन लग जाती है। यह बहुत अच्छी बात है। ऐसा होना ही चाहिये।

आपने शादी नहीं की और करना भी नहीं चाहते—यह अच्छी बात है; पर ब्रह्मचर्यका पूर्णतया पालन होना चाहिये, नहीं तो विवाह कर लेना अच्छा है।

आशीर्वाद और उपदेश देनेका तो मेरा अधिकार और योग्यता नहीं है; इसलिये लाचार हूँ। पर सलाहके रूपमें मेरा यही लिखना है कि आप भगवान्‌में प्रेम और उनकी रटन बढ़ाते रहें। भगवान्‌का चिन्तन निरन्तर होना चाहिये। सत्सङ्ग इसके लिये बहुत ही सहायक है।

सादर प्रेमपूर्वक हरिस्मरण ! आपका पत्र यथासमय मिला, समाचार विदित हुए। किसी उर्दू कविताके दो पदोंका अनुवाद लिखा और शङ्काका समाधान करनेके लिये प्रेरणा की, सो यह आपके धर्मप्रेमका परिचय है। आपका लिखना और पूछना बहुत ही उत्तम है।

शङ्काओंके उत्तर

(१) शङ्कर भगवान्‌का स्तर सब देवताओंमें ऊँचा है—यह सर्वथा सत्य है । उनके लिङ्गकी पूजाका अर्थ जननेन्द्रियकी पूजा मानना सर्वथा अयुक्त है। यह तो आप स्वयं जानते ही हैं कि लिङ्ग शब्दका यथार्थ अर्थ चिह्न है, न कि जननेन्द्रिय । पुरुष-चिह्नका परिचायक होनेके नाते उपस्थेन्द्रियका नाम भी 'लिङ्ग' रूढ़ि हो गया। इतनेसे यह नहीं समझना चाहिये कि शिवलिङ्गकी पूजा उपस्थकी पूजा है; बल्कि यही समझना चाहिये कि भगवान् शिवकी किसी भी वस्तुमें भावना करके पूजा की जा सकती है। वे निमित्तमात्रसे प्रसन्न हो जाते हैं; क्योंकि परम दयालु और आशुतोष ही तो ठहरे । हमारे शास्त्रोंमें केवल शिवपूजाके लिये ही ऐसा विधान नहीं है । दूसरे-दूसरे देवताओंकी पूजा भी संकेतमात्रसे ही की जाती है। जैसे—

विवाह और दूसरे-दूसरे माङ्गलिक अवसरोंपर सुपारी या मिट्टी या गुड़के गोलमटोल गणेश बनाकर पूजा करते हैं। चावलोंकी छोटी-छोटी ढेरी बनाकर उनमें नवग्रहोंकी भावना करके पूजा की जाती है । वैसे ही षोडश मातृकाओंकी पूजा

गेहूँकी ढेरीपर या काठपर लकीर खींचकर की जाती है एवं भगवान् शिवकी भाँति ही गोलमटोल छोटी-सी शिलामें भगवान् विष्णु, राम, कृष्णकी भावना करके शालग्राम-शिलाका पूजन विधि-विधानसे किया जाता है। इसलिये शिवकी पूजा भी किसी पाषाणको उनका चिह्न मानकर करना सर्वथा धर्मसंगत है। कोई बुरी बात नहीं है। शङ्कर भगवान्‌की पूजा भी मूर्तिके रूपमें की जा सकती है। उनकी मूर्तिके ध्यान-स्मरणका वर्णन शास्त्रोंमें जगह-जगह पाया जाता है। अतः सभी देवताओंके लिये एक-सा ही विधान है। अपनी-अपनी श्रद्धासे इसका सम्बन्ध है।

(२) महारानी द्रौपदीका विवाह अकेले अर्जुनके साथ नहीं हुआ था, पाँचों पाण्डवोंके ही साथ हुआ था। वेदव्यासजीकी आज्ञा लेकर बहुत कुछ समझ-सोचकर राजा द्रुपदने विवाह किया था। माता कुन्तीकी आज्ञासे धर्मराज युधिष्ठिरको यह बात स्वीकार करनी पड़ी थी। और द्रौपदीको पूर्वजन्मका शाप था—इस कारण उसका पाँच पतियोंके साथ विवाह हुआ था। द्रौपदी बड़ी साध्वी और पतिपरायणा देवी थीं। उनकी प्रायः सभी क्रिया धर्म और न्याययुक्त थी—इसमें धर्मविरुद्ध कोई बात नहीं है।

---

[४४]

प्रेमपूर्वक हरिस्मरण! आपका पत्र यथासमय मिल गया था, पर अवकाश न मिलनेके कारण उत्तर देनेमें विलम्ब हो गया—इसके लिये किसी प्रकारका खेद न कीजियेगा।

आपने श्रीसूरदासजीके एक पदका भावार्थ पूछा, सो आपकी दया है। इस बहाने श्रीसूरदासजीकी कवितापर विचार करनेका अवसर मिला, यह भी बड़े आनन्दकी बात है।

इस पदका अर्थ तीन प्रकारसे किया जा सकता है—एक तो यह कि मानो श्रीराधिकाजी भगवान् श्रीकृष्णके रूपको देख-देखकर उन्मत्त हो रही हैं, उस समय राधिकाजीके नेत्रोंकी क्या दशा है—उसका वर्णन सूरदासजी करते हैं।

दूसरा यह कि मानो श्रीकृष्ण भगवान् श्रीराधिकाजीके रूपको देख रहे हैं, उस समयके उनके नेत्रोंकी शोभाका वर्णन है।

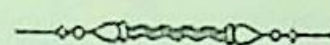
तीसरा यह कि सूरदासजी स्वयं भगवान्के दर्शन करते हुए अपने नेत्रोंकी वृत्तिका वर्णन करते हैं।

परन्तु तीनोंमेंसे पहला अर्थ मानना ही अधिक अनुकूल प्रतीत होता है वास्तवमें क्या बात है—यह तो भगवान् जानें। पूर्वापरके पद सामने रहते तो अनुमान करनेमें अधिक सहायता मिल सकती थी।

पदका शब्दार्थ इस प्रकार किया जा सकता है—

'अहो! श्रीराधिकाजीके नेत्ररूपी खञ्जन पक्षी भगवान् श्रीकृष्णके रूप-रसको पी-पीकर मतवाले हो रहे हैं; ये बड़े सुन्दर और चपल हैं, अतः पलकरूप पिंजरेमें नहीं समाते हैं। अर्थात् उस समय नेत्रोंकी पलकें पड़नी बंद हो गयी हैं। ये इधर-उधर उछलते हुए मानो कानोंके पास जा रहे हैं। यदि इनके अञ्जनका पट लगा हुआ नहीं होता तो सम्भव है, ये अवश्य उड़ जाते। यानी श्रीकृष्णके स्वरूपमें जा मिलते।'

यह अर्थ मैंने अपनी साधारण बुद्धिके अनुसार लिख दिया है। अधिक भावका प्रकाश तो प्रेमी भक्तजन ही कर सकते हैं।



[४५]

सादर प्रणामपूर्वक हरिस्मरण! आपका पत्र मिला, आपके प्रश्नोंका उत्तर क्रमशः इस प्रकार है—

(१) अन्त्यज भाइयोंके स्पृश्यास्पृश्यका जो प्रश्न उठा है, उसमें बड़ी भारी भूल हिंदू-समाजके दम्भाचारी हिंदुओंकी है; क्योंकि उन लोगोंने अस्पृश्यताके साथ-ही-साथ अपने हरिजन भाइयोंके साथ घृणा और द्वेषकी वृद्धि कर ली, उनके साथ भाई-चारेका और प्रेमका सम्बन्ध नहीं रक्खा। जैसे अपनी मा-बहिनें रजस्वला या प्रसूतिका हो जानेपर उस समय अस्पृश्य होते हुए भी उनमें प्रेमकी त्रुटि नहीं होती, उसी प्रकार हरिजनोंके कर्मदोषसे फैलनेवाली गंदगी दूसरोंके स्वास्थ्य और आध्यात्मिकताको हानि न पहुँचावे, केवल इसी विचारसे उनके साथ स्पर्श आदिका परहेज रक्खा जाता, परन्तु उनके आदर-सत्कारमें और प्रेमके व्यवहारमें किसी तरहका अन्तर नहीं किया जाता, उनको अपना ही एक अङ्ग माना जाता तो आज यह परिस्थिति पैदा ही नहीं होती। दूसरी बात यह हुई कि धार्मिक दृष्टिसे उनकी अपेक्षा अधिक अस्पृश्य जो विधर्मी हैं, हिंदू-धर्मका विरोध करनेवाले हैं, उनका मान हुआ। उनका स्पर्श करके हम उलटे प्रसन्न होने लगे, इससे हरिजनोंका हृदय

और भी अधिक जल उठा। दम्भी लोग आचरणोंमें हरिजनोंसे अधिक नीच होते हुए भी पूजाके पात्र समझे जाने लगे। यह भी भयानक भूल समाजमें आ गयी। इन सब कारणोंसे अब समाजका कर्तव्य हो गया है कि वह हरिजनोंके साथ प्रेमका व्यवहार करे, उनको अधिक-से-अधिक सुख पहुँचानेके साधन उपस्थित करे। उनके रहन-सहनकी सुविधाका प्रबन्ध करे। उनकी जीविकाके साधन सरल बनावे और उनका आदर-सम्मान करे एवं सार्वजनिक कुएँ, पाठशाला और धर्मशाला आदि स्थानोंमें जहाँ विधर्मी जा-आ सकते हैं, उनको नहीं रोका जाता, वहाँ हरिजनोंके भी जाने-आनेमें किसी तरहकी बाधा न दे। छूआछूतमें भी यही नीति रक्खे। उनके साथ खान-पान न करे; यदि स्पर्श हो जाय तो स्वयं स्नान कर ले। किन्तु जो होटलोंमें खाते-पीते हैं, मुसल्मान और अंग्रेजोंसे मिलने-जुलनेमें कोई संकोच नहीं करते हैं, वे यदि हरिजनोंके स्पर्शसे परहेज करते हैं तो यह उनका स्पष्ट अन्याय है।

(२) मनके निग्रहकी आसान युक्ति पूछी सो 'मनको वश करनेके कुछ उपाय' नामकी एक पुस्तक गीताप्रेससे निकली है, उसे देखिये और भगवान्में प्रेमपूर्वक मन लगानेकी चेष्टा कीजिये।

(३) माता सीता साक्षात् भगवती थीं। भगवान्की अनन्या शक्ति ही सीताके रूपमें प्रकट हुई थीं। अतः उनका शरीर लोगोंकी दृष्टिमें पाञ्चभौतिक होते हुए भी वास्तवमें दिव्य था। वे किसीके गर्भसे उत्पन्न नहीं हुई थीं। पृथ्वीसे

निकली थीं और अन्तमें भी उसीमें प्रविष्ट हो गयीं। इसका वर्णन वाल्मीकीय रामायणमें स्पष्ट आया है। राजा जनकको ये समुद्रमें नहीं मिली थीं, यज्ञके लिये भूमि खोदते समय भूमिके अंदर मिली थीं। उनका पालन-पोषण उनके ही संकल्पसे होता था। सारे जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और संहार जिनके संकल्पसे होता है, उनके विषयमें यह प्रश्न ही नहीं उठ सकता।

(४) राजा धृतराष्ट्रके सौ पुत्र रानी गान्धारीके ही गर्भसे उत्पन्न हुए थे, यह स्पष्ट उल्लेख है।* अतः इसमें शङ्का-की कोई बात नहीं है।

(५) राजा सगरके भी ६०००० पुत्र बताये हैं, इसमें भी कोई शङ्काकी बात नहीं है। ऋषियोंके वरदानसे ऐसा हो सकता है।†

[४६]

प्रेमपूर्वक हरिस्मरण ! आपका पत्र मिला। आपने दो मन्त्रोंका अर्थ अलग-अलग पूछा और उनके ध्यानके विषयमें पूछा सो उत्तर इस प्रकार है—

(१) पहला मन्त्र—'गोपीजनवल्लभचरणान् शरणं प्रपद्ये' इसका अर्थ यह है कि गोपीजनोंके तथा उनके परमप्रिय श्रीकृष्णके चरणोंकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ। इस मन्त्रका जप करते समय ध्यान श्रीकृष्ण भगवान्‌की बाल्यावस्थाका करना चाहिये।

---

* महाभारत आदिपर्वका ११५ वाँ अध्याय देखिये।

† महाभारत वनपर्वका १०६ ठा और १०७ वाँ अध्याय देखिये।

(२) दूसरा मन्त्र--'नमो गोपीजनवल्लभाभ्याम्' इसका अर्थ यह है कि गोपीजनोंके प्रिय जो श्रीकृष्णके दोनों चरणकमल हैं, उनको मैं नमस्कार करता हूँ या यह भी अर्थ किया जा सकता है कि गोपीजनोंके प्रिय जो श्रीराधिकाजी और श्रीकृष्ण हैं, उन दोनोंको मैं नमस्कार करता हूँ। ध्यान पहले अर्थके अनुसार तो भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंका करना चाहिये और दूसरे अर्थके अनुसार युगल सरकारका यानी श्रीराधिकासहित श्रीकृष्णका करना चाहिये।

इन दोनों मन्त्रोंके जपका विधान अलग-अलग है। इसलिये इनका एक साथ जप नहीं करना चाहिये। सरल तो साधकके अभ्यासके अनुसार दोनोंमेंसे कोई भी एक हो सकता है। भगवान्के ध्यानसे पापोंका क्षय तो अनायास ही होता है, इसके सिवा स्वयं भगवान् भी मिल जाते हैं।



[४७]

सादर प्रणाम ! आपका पत्र यथासमय मिला, समाचार मालूम हुए। आपने मेरी बड़ाईके समाचार लिखे सो ऐसा नहीं लिखना चाहिये। मुझे तो एक साधारण मनुष्य और मित्र या सेवकके समान समझना चाहिये। जो महापुरुष हैं, उनको तो मेरा बारम्बार प्रणाम है।

आपके प्रश्नोंका उत्तर क्रमशः इस प्रकार है--

(१) गायत्री-मन्त्रमें परब्रह्म परमेश्वरकी स्तुति, ध्यान और प्रार्थना है--यही स्पष्ट प्रतीत होता है। सूर्य उसी परमेश्वरका प्रतीक है, अतः सूर्यके रूपमें भी स्तुति, ध्यान

और प्रार्थना उस परब्रह्म परमेश्वरकी ही की जाती है। सावित्री देवी इस मन्त्रकी अधिष्ठातृ देवता हैं, इस कारण इस मन्त्रका नाम गायत्री पड़ा है। इसके सिवा छन्दका नाम भी गायत्री है। परन्तु उपास्य और प्रतिपाद्य तो पूर्णब्रह्म परमात्मा ही हैं। उनका नाम चाहे जो भी कुछ मान लिया जाय।

(२) 'भर्गः' पदका अर्थ शक्ति न मानकर परमेश्वरका तेजोमय स्वरूप मानना ही अधिक ठीक है। उस तेजका एक अंश सूर्यके रूपमें प्रत्यक्ष है, इसीसे प्रतीकके रूपमें इसे सूर्यकी उपासना माननेमें कोई विरोध नहीं, जैसे मूर्तिकी पूजा। गायत्री देवीका जो ध्यान-आवाहन आदि प्रचलित हो गया है, वह तो अधिष्ठातृ देवता होनेके नाते चल पड़ा है, ऐसा मालूम होता है।

(३) सन्ध्यावन्दनमें गायत्री-मन्त्रसे सूर्यको अर्घ्य दिया जाता है और अन्तमें सूर्योपस्थान होता है। 'सवितृ' शब्दका मुख्य अर्थ भी सूर्य है। वह सब ठीक है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। ऐसा होनेका कारण ऊपर बताया गया है कि यह सूर्य उस परमात्माकी प्रत्यक्ष मूर्ति है, ऐसा मान-कर इस प्रकार इसकी उपासनाका विधान है।

(४) गायत्री-पुरश्चरणमें भी जो शक्ति और सूर्यकी उपासनाका विधान मिलता है, उसे भी अधिष्ठातृ देवता और प्रतीकके नाते ही समझना चाहिये। मुख्य उपासना तो इसमें परब्रह्म परमेश्वरकी ही है।

(५) 'साधनाङ्क'में सन्ध्या-गायत्रीकी महत्ताका वर्णन करते हुए जो गायत्री-मन्त्रके प्रतिपाद्य सूर्यनारायण बताये गये

हैं, उसका अभिप्राय भी नारायण पूर्णब्रह्मके साथ सूर्यका अभेद प्रतिपादन करना ही है ।

(६) दूसरे अङ्कमें जो ऐसा कहा है कि गायत्री-मन्त्रमें परमात्माका ध्यान और प्रार्थना है, वह उचित ही है। उसका औचित्य ऊपर बताया ही है।

(७) चौबीस गायत्रियोंकी कल्पना साम्प्रदायिक है। मन्त्रके अक्षरार्थसे सर्वशक्तिमान् पूर्णब्रह्म परमेश्वरका ही वर्णन है । यही ठीक मालूम होता है । शक्तिमान्‌के ध्यानमें उसकी शक्ति और प्रभावका ध्यान तो अन्तर्गत आ ही जाता है; फिर दूसरी तरहसे उसका ध्यान करना मेरी समझमें तो आवश्यक नहीं है।

आपके दूसरे प्रश्नका उत्तर इस प्रकार है—

सत्सङ्ग न मिलनेके कारण दुःखसागरमें डूबना यदि दीखता हो तो सत्सङ्गकी चेष्टा होनी चाहिये। किसी कारणसे शीघ्र न मिले तो सत्पुरुषोंके लिखे हुए उपदेशोंका अध्ययन करके उससे लाभ उठाना चाहिये ।

तीसरा प्रश्न आपका अपवित्रताके विषयमें है। सो इसका तो यही उत्तर हो सकता है कि अपना कल्याण चाहनेवाले मनुष्यको विषय-लोलुप न होकर संयमी होना चाहिये। संयमीके लिये कोई भी परिस्थिति उसे अपवित्र वस्तुओंका सेवन करनेके लिये बाध्य नहीं कर सकती। नलका पानी न पीकर कुएँ और नदी आदिका पानी पीना चाहिये। चीनी मिलोंसे बनी हुई न खाकर देशी खाँड़ या गुड़का उपयोग करना चाहिये। जूते तो कपड़े और रबड़के मिलते ही हैं, वही पहनने चाहिये।

बनावटी घी कतई नहीं खाना चाहिये। घरमें गाय रखनी चाहिये। यथासाध्य उसीका घी खाना और दूध पीना चाहिये। मशीन-का बना हुआ कोई भी खाद्यपदार्थ काममें नहीं लाना चाहिये। कपड़ा हाथका बुना हुआ ही पहनना एवं काममें लाना चाहिये। और भी जो-जो चीजें अपवित्र हों, उनका त्याग करना चाहिये। भोग-सामग्रियोंका जितना त्याग होगा, उतना ही वह साधनमें सहायक होगा। इसीमें सब प्रकारसे कल्याण है।

[४८]

सादर हरिस्मरण! आपका पत्र मिला। समाचार मालूम हुए। आपके प्रश्नोंके उत्तर इस प्रकार हैं—

आपने प्रदोषव्रतका नियम पूछा सो इस व्रतके खास-खास नियमोंका तो मुझे ज्ञान नहीं है; परंतु कुछ नियम ऐसे हैं, जिनका हरेक व्रतोंसे सम्बन्ध है--जैसे अहिंसा, सत्य, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य, भोगसामग्रियोंका त्याग, पवित्रतासे रहना, किसीपर क्रोध न करना, सब प्रकारकी परिस्थितियोंमें सन्तुष्ट रहना, इन्द्रियोंको वश-में रखना, मनको विषयोंकी ओर न जाने देना, गीता-रामायणादिका पाठ करना, भगवान्‌के नाम और रूपका स्मरण करना और हर समय भगवान्‌को न भूलनेका प्रयत्न करना इत्यादि। प्रदोषव्रत यदि उपर्युक्त नियमोंके पालनपूर्वक किया जाय तो उसका फल भगवान्‌में प्रेम होना चाहिये, चाहे वह किसी भी वारका हो।

पतिके सुख और आनन्दके लिये सौभाग्यवती स्त्रीको पतिके आज्ञानुसार काम करना चाहिये। भगवान्‌की पूजा

और व्रत भी पति आज्ञा करें, वैसे ही करना चाहिये। बिना प्रतिष्ठा की हुई मूर्तिका पूजन अपने घरमें हरेक स्त्री, पुरुष कर सकते हैं। पूजाकी विधि गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित—'प्रेमभक्ति-प्रकाश' नामक पुस्तकमें बतायी हुई है।

दूसरेकी प्रतिष्ठा की हुई मूर्तिकी पूजा उसकी अनुमतिसे करनेमें कोई दोष नहीं है। मूर्तिकी प्रतिष्ठामें विशेष धन-खर्च-की आवश्यकता नहीं है, प्रेम होना चाहिये। भगवान् श्रीशङ्कर, श्रीदुर्गा, गणेश, श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्रीवामन, श्रीनृसिंह आदिकी पूजाका अवसर आनेपर उनकी पूजा आदरपूर्वक बड़े उत्साहसे करनी चाहिये। श्रद्धा भी अवश्य होनी ही चाहिये। श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्रीवामन और श्रीनृसिंह तो एक ही भगवान्के अवतार हैं। इनमेंसे तो किसी भी एकका इष्ट होनेसे सभी इष्ट देवता हो गये। भगवान् शङ्कर श्रीराम और श्रीकृष्णके मुख्य भक्त हैं, इस नातेसे और दुर्गा तथा गणेश श्रीशङ्करकी पत्नी और पुत्र हैं एवं भगवान्के भी भक्त हैं, अतः सभी श्रद्धा-पूर्वक पूजनीय हैं। इसी तरह अन्य देवोंके विषयमें भी समझ लेना चाहिये। सब देवोंकी यथायोग्य पूजा करनेके लिये भगवान्की आज्ञा भी है (गीता १७। १४), अतः अपने इष्टके आज्ञापालनके रूपमें हम चाहे किसीका भी निष्कामभावसे पूजा-सत्कार करें, वह मुख्यतया हमारे इष्टदेवकी ही पूजा है।

पाठ करते समय करन्यासादिका करना कोई परमा-वश्यक नहीं है, अतः बार-बार करनेकी आवश्यकता नहीं है।

श्रीराम और मुरलीमनोहर कोई दो नहीं हैं। एक ही भगवान् भिन्न-भिन्न समयमें आवश्यकतानुसार भिन्न-भिन्न

रूपोंमें प्रकट होते हैं । आपका जिस रूपमें प्रेम हो, उसीका पूजन और ध्यान करना चाहिये ।

पतिसे हठ करना पति-सेवा नहीं है। उनकी आज्ञाका पालन करते हुए हर प्रकारसे उनके शरीर और मनको सुख पहुँचानेकी चेष्टा ही पति-सेवा है और उनमें ही अनन्य प्रेम करना पातिव्रत धर्म है। वे यदि भगवान्‌की पूजाके लिये कहते हैं तो वही करना चाहिये। वे अपनी पूजा और जूठन खानेसे प्रसन्न नहीं हैं तो वैसा नहीं करना चाहिये। उपर्युक्त बातोंको समझकर अपनी दिनचर्या तो आपको स्वयं या अपने पतिदेवकी सम्मतिसे बना लेनी चाहिये। उसीमें सुविधा होगी।



[४९]

प्रेमपूर्वक हरिस्मरण ! आपका पत्र मिला। समाचार ज्ञात हुए। आपके प्रश्नोंके उत्तर इस प्रकार हैं—

(१) गीता अध्याय ११ श्लोक ४६ के विषयमें आपने जो यह पूछा कि 'अर्जुनने भगवान् विष्णुका चतुर्भुजरूप पहले कब देखा था, जिसके आधारपर वह यह कहता है कि उस रूपको दिखलाइये ।' इसका उत्तर यह है कि अर्जुनने इससे पहले भगवान्‌के वैष्णव चतुर्भुजरूपका दर्शन किया हो या नहीं किया हो, उस रूपकी महिमा तो सुन ही रक्खी थी और अब यह मालूम हो गया कि ये श्रीकृष्ण साक्षात् परमेश्वर ही हैं, तब उनमें यह कहना बन सकता है कि 'आपका वह विष्णुरूप जो परमधाममें विराजित है, उसका मैं दर्शन करना चाहता हूँ। जैसे आपने मुझे अपना विश्वरूप दिखाया, वैसे ही अब चतुर्भुजदेवरूप दिखायें।'

यहाँ शङ्ख और पद्मका नाम न लेकर केवल गदा और चक्र हाथमें लिये हुए देखनेकी बात तो उपलक्षणरूपसे कही गयी है यानी सङ्केतमात्रसे दो वस्तुओंका नाम लिया गया है। पीताम्बर और वैजयन्तीमाला आदि सभी आभूषणोंका यदि वर्णन किया जाता तो सभी कुछ एक श्लोकमें नहीं कहा जा सकता। अतः ऐसा नहीं किया गया; इसमें दोके कहनेसे ही शङ्ख और पद्म भी दूसरे दो हाथोंमें लिये हुए देखना चाहता हूँ, यह कहना समझ लेना चाहिये।

आपने जो यह बात कही कि 'अर्जुनने पहले तो भगवान्‌को श्रीकृष्णके रूपमें ही देखा था' सो ठीक है। इसीलिये तो विश्वरूपका दर्शन करके वह आश्चर्यान्वित होता है और उनके प्रभावको जो पहले नहीं समझा था, उसके लिये क्षमा चाहता है और विष्णुरूप दिखलानेके लिये प्रार्थना करता है। यदि उनको साक्षात् नहीं समझता तो ऐसी प्रार्थना कैसे कर सकता।

(२) सगरके पुत्रोंने समुद्रको खोदा था, अतः वह सगरके पुत्रोंसे उत्पन्न होनेके नाते उनका पुत्र हुआ, इसीसे उसका नाम 'सागर' हुआ और श्रीरामचन्द्रजी उन्हींके वंशज हैं, इस सम्बन्धसे समुद्रको कुलगुरु अर्थात् कुलके बड़े-बूढ़े कहना उचित ही है।

(३) आपने जिस दोहेका* उदाहरण देकर सत्सङ्गके विषयमें प्रश्न किया है, उस दोहेमें सत्सङ्गका अर्थ भाषण नहीं है। उसमें तो महापुरुषके दर्शनमात्रका ही लक्ष्य करके सत्सङ्गकी महिमा कही गयी है और यह दोहा भागवतके जिस श्लोकका

* तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला इक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥

अनुवाद* मालूम देता है उस जगह सत्सङ्गका अर्थ भगवान्‌में परम प्रेम होना माना गया है। इन दोनोंमें ही अधिक समयकी अपेक्षा नहीं रहती। इसलिये 'लव' कहनेमें कोई अड़चन नहीं आती।



[५०]

प्रेमपूर्वक हरिस्मरण! आपका पत्र यथासमय मिल गया था, समयके अभावसे प्रायः उत्तर देनेमें विलम्ब हो जाया करता है।

आपने अपने दुःखका विवरण लिखा सो मालूम हुआ। कोई आदमी मन्त्र-तन्त्रसे कोई चीज किसीको खिलाकर दुःख नहीं पहुँचा सकता। सब लोग अपने-अपने कर्मोंके अनुसार दुःख-सुख भोगते हैं। आपको इस बातका वहम नहीं रखना चाहिये।

आप किसी भक्त या सिद्ध पुरुषकी कृपा चाहते हैं, सो बहुत आनन्दकी बात है, मैं तो साधारण मनुष्य हूँ।

आपने लिखा कि भगवान्‌की प्रसन्नताका मेरे पास कोई साधन नहीं है। सो उनकी प्रसन्नताके लिये ऐसी किसी वस्तुकी आवश्यकता ही नहीं है जो आपके पास न हो। उनका नाम तो दुःखहारी, दीनबन्धु तथा पतितपावन है। दुखी तो आप अपने-

---

* तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः॥
(श्रीमद्भा० १। १८। १३)

'भगवान्‌के प्रेमी भक्तोंके लवमात्रके सत्सङ्गसे स्वर्ग अथवा मोक्षकी भी तुलना नहीं की जा सकती, फिर संसारके तुच्छ भोगोंकी तो बात ही क्या है।'

को मानते ही हैं। दीन और पतित भी मानते ही होंगे, फिर भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये और क्या चाहिये ? आप भगवान्‌पर विश्वास करके निरन्तर उन्हें याद रखनेका प्रयत्न कीजिये। अपनी स्तुति-प्रार्थना मन-ही-मन उनको सुनाते रहिये। वे तो प्रसन्न हुए ही हैं, केवल आपके समझनेकी देर है।

[५१]

प्रेमपूर्वक हरिस्मरण ! आपका कार्ड मिला। समाचार मालूम हुए। शास्त्रोंकी आज्ञा तो जितनी पालन की जा सके, उतना ही कल्याण है। उनका यथावत् पालन न होना यदि खटकता रहे तो उनका पालन होना सम्भव है।

आपके प्रश्नोंका उत्तर क्रमसे इस प्रकार है—

यथासाध्य स्वाध्याय, सत्सङ्ग, वेदान्त और ज्ञानमार्गका अभ्यास आदि सब कुछ करते हुए भी भगवान्‌पर पूर्ण निर्भरता न होनेका कारण पूछा सो इसका कारण तो स्पष्ट ही श्रद्धा-प्रेमकी कमी है। यदि भगवान् और उनके गुण-प्रभावपर मनुष्यका सच्चा विश्वास हो जाय तो फिर वह उनपर निर्भर हुए बिना रह ही कैसे सकता है। वह इन्हें छोड़कर और दूसरा करेगा ही क्या ? संसार-जालका शीघ्रातिशीघ्र नाश होकर भगवान्‌के दर्शन होनेका सरल उपाय तो यही समझमें आता है कि प्रेमपूर्वक निरन्तर उन्हींकी स्मृति बनाये रखनेका हरेक प्रकारसे प्रयत्न किया जाय। इसके प्रकार अपनी-अपनी सुविधाके अनुसार भिन्न-भिन्न हो सकते हैं।

[५२]

सादर हरिस्मरण ! आपका कार्ड यथासमय मिल गया था, समय कम मिलनेके कारण उत्तर देनेमें विलम्ब हो गया सो ऐसा प्रायः हो जाया करता है।

वास्तविक समाधान तो आप्तपुरुषोंद्वारा ही होता है और यदि मिल सकें तो ऐसे पुरुषोंसे ही पूछना भी चाहिये। मैं तो एक साधारण मनुष्य हूँ, तथापि आपने मुझे पूछ लिया है, इसलिये अपनी साधारण समझके अनुसार आपके प्रश्नोंका उत्तर क्रमसे लिखा जाता है।

(१) जीवकी उत्पत्ति नहीं होती, यह अनादि है।

(२) जीव चेतन होनेके कारण ईश्वरका अंश है। जीव अल्पज्ञ है; ईश्वर सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान्, जगत्‌की उत्पत्ति, पालन और संहार करनेवाला है।

(३) ईश्वर, भगवान् और परमात्मा एक ही ईश्वरके नाम हैं। इनमें कोई भेद नहीं है।

(४) 'मैं' अहंकारको कहते हैं। यदि इसीको लक्ष्य करके आपका प्रश्न है, तब तो कोई बात नहीं, नहीं तो, 'मैं' का अर्थ जीव या आत्मा समझना चाहिये।

(५) जो कुछ हमारे मन, बुद्धि और इन्द्रियोंसे प्रतीत होता है, वह समस्त जगत् प्रकृतिका कार्य है और वह परिवर्तनशील होनेके कारण अनित्य है।

(६) परमात्मा वही सच्चिदानन्दघन परमेश्वर है, जिसको ईश्वर, भगवान् और पुरुषोत्तम भी कहते हैं।

(७) परमात्माको जाननेवाला और बतानेवाला कोई विरला ही महापुरुष होता है। उसीको ज्ञानी, सिद्ध, महापुरुष, परमभक्त और संत आदि नामोंसे कहा करते हैं।

(८) सत्य ब्रह्ममें मिथ्या जगत्‌का भास अज्ञानसे है।

(९) वशिष्ठाश्रमसे नन्दिनी गौको छीनकर ले जाते समय म्लेच्छ कैसे उत्पन्न हुए, इसका विस्तारपूर्वक वर्णन तो महाभारत आदिपर्वके १७५ वें अध्यायमें आता है, वहाँ देख सकते हैं। कामधेनुकी इच्छासे सब कुछ हो सकता है, इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है।

(१०) जिसका अपने पतिमें ही अनन्य प्रेम होता है, उसे पतिव्रता कहते हैं। वह अपने पतिके अनुकूल उन्हींके इच्छानुसार उन्हींके सुखके लिये सब कुछ करती है। यही उसके आचरण और रहन-सहनका सार है।

(११) वामन भगवान्‌ने तीन पैंड पृथ्वी कैसे माँगी, कैसे नापी और किस प्रकार चरण बढ़ाये, इसका वर्णन श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थोंमें विस्तारपूर्वक देखना चाहिये।* ईश्वर सर्वशक्तिमान् हैं, उनके लिये यह सब करना साधारण बात है।

[५३]

प्रेमपूर्वक हरिस्मरण ! आपके दो पत्र यथासमय मिले। समाचार मालूम हुए। समय कम मिलनेके कारण उत्तरमें विलम्ब तो मुझे प्रायः हो जाया करता है। आपके प्रश्नोंका उत्तर क्रमसे इस प्रकार है—

---

* भागवतमें अष्टम स्कन्धका २० वाँ और २१ वाँ अध्याय देखिये।

(१) मनकी चञ्चलताका विवरण लिखकर उसके निरोधका उपाय पूछा सो इसके दो उपाय गीता (६। ३५) में और योगशास्त्र (१। १२) में भी बताये गये हैं—(१) अभ्यास और (२) वैराग्य। अभ्यासके अनेक भेद हो सकते हैं। आपने लिखा कि मैंने बहुत-से उपाय किये, पर उनमें सफलता नहीं मिली सो इसका कारण तो यह हो सकता है कि आपके उपाय ठीक नहीं थे। आपने प्राणायामके विषयमें पूछा सो आजकलके जमानेमें यह बड़ा कठिन है। मेरी समझमें तो सरल उपाय यही है कि संसारके समस्त भोगोंको नाशवान् और तुच्छ समझकर मनको उधरसे हटाया जाय, हरेक भोगके परिणाममें होनेवाले दुःखपर विचार किया जाय और भगवान्के नाम, गुण, लीला और स्वरूपमें मन लगाया जाय तथा उनका महत्त्व मनको समझाया जाय तो प्रयत्न करते-करते मन भगवान्में लग सकता है। भगवान्में प्रेम हो जानेके बाद मनका निरोध करनेके लिये किसी उपायकी आवश्यकता नहीं रहती। जैसे वह अब संसारमें अपने-आप भटकता है, वैसे ही फिर अपने-आप निरन्तर भगवान्में लगा रहेगा।

(२) आपने पञ्चमहायज्ञोंकी विधि विस्तारपूर्वक पूछी सो इनके विस्तारका कोई अन्त नहीं है। पत्रमें इनका विस्तार नहीं लिखा जा सकता, आप पुस्तकोंमें देखिये। आह्निकसूत्रावली-में सब बातें मिल सकती हैं। संक्षेपमें इस प्रकार है—

(क) नित्य सन्ध्या-वन्दन, गायत्री-जप और भगवान्का भजन-ध्यान करना—तथा महर्षियोंके हृदयसे प्रकट हुए वेद-मन्त्रोंका, स्मृतियोंका और धर्मशास्त्रोंका पठन-पाठन करना 'ऋषियज्ञ' है; इसीको ब्रह्मयज्ञ कहते हैं।

(ख) देवताओंके उद्देश्यसे विधिपूर्वक मन्त्रके साथ नित्य हवन और पूजन करना 'देवयज्ञ' है।

(ग) पितरोंके निमित्त नित्य श्राद्ध और तर्पण करना 'पितृयज्ञ' है।

(घ) सब प्राणियोंकी यथायोग्य सेवा करना, हर प्रकारसे उनको सुख पहुँचानेका प्रयत्न करना, उनको अपने घरसे कुछ-न-कुछ भोजन देकर स्वयं भोजन करना—यह 'भूत-यज्ञ' है; इसीको वलिवैश्वदेव कहते हैं।

(ङ) अतिथियोंका सेवा-सत्कार करना 'मनुष्ययज्ञ' है।

संक्षेपमें जो वलिवैश्वदेवकी विधि गीताप्रेससे छपी है, उसके अनुसार करनेसे भी आंशिकरूपसे पञ्चमहायज्ञ हो जाते हैं।

(३) आलस्य-नाशका उपाय पूछा और साधनके आरम्भकालमें यह दोष नहीं था, अब अधिक हो गया है—इसका कारण पूछा सो इसका कारण तो साधनमें श्रद्धा और प्रेमकी कमी ही हो सकती है। आरम्भकालमें साधनपर श्रद्धा अधिक रही होगी और प्रेम भी रहा होगा; फिर कुछ दिनके बाद उसका फल प्रत्यक्ष देखनेमें न आनेके कारण श्रद्धा और प्रेमकी कमी होगयी होगी। ऐसा परिवर्तन साधकके जीवनमें सत्पुरुषोंका सङ्ग कम मिलनेके कारण और साधनका फल प्रत्यक्ष चाहनेके कारण हुआ करता है; परंतु मनुष्यको इससे निराश नहीं होना चाहिये। अच्छे पुरुषोंका सङ्ग करके उनके कथनानुसार साधनमें श्रद्धा और उत्साहपूर्वक लगना चाहिये।

भगवान्‌के नाम, गुण, प्रभाव, लीला, धाम और स्वरूपका

महत्त्व जितना-जितना समझमें आता जायगा, उतना-ही-उतना साधकका उधर मन आकर्षित होता जायगा और जितना मन साधनमें लगेगा, उतना ही ज्ञान भी बढ़ता चला जायगा। यदि पहले-पहल समझमें न आवे, तब भी साधक यदि शास्त्र और महापुरुषोंके वचनोंको मानकर भगवान्‌पर विश्वास कर ले तो भी विश्वासके अनुसार उसका प्रेम हो जाता है और साधनमें उन्नति हो सकती है। साधनमें प्रेम होनेके बाद आलस्य या निद्रा बाधा नहीं दे सकते।

आपके पहले पत्रका उत्तर इस प्रकार है—

(१) सबको भोजन कराकर भोजन करनेकी बातका उत्तर ऊपर दूसरे प्रश्नके उत्तरमें आ गया है, आप जो कुछ करते हैं, वह तो ठीक है ही। उसके सिवा और भी हरेक भूखे, प्यासे और दुखी मनुष्योंकी यथायोग्य सेवाका ध्यान रखना चाहिये।

(२) इसका उत्तर प्रायः पहले प्रश्नके उत्तरमें आ गया है। मन जितना शीघ्र भगवान्‌के प्रेमसे वशमें हो सकता है, उतना दूसरे उपायोंसे होना कठिन है।

(३) आलस्य और निद्राके विषयमें तो ऊपर लिखा ही जा चुका है। आपके पिताजीका मन अर्थोपार्जनमें लगा हुआ लिखा सो यह तो साधारण बात है। उनका मन भी जिस प्रकार भगवान्‌की ओर लगे, वैसा प्रयत्न करना चाहिये। उनके भयसे आप सत्सङ्गमें नहीं आ सके सो ठीक है। सत्सङ्गके लिये मनमें उत्सुकता होनी भी उत्तम है। इच्छा रहनेपर कभी-न-कभी पूरी भी हो ही सकती है। पिताजीको सेवाद्वारा प्रसन्न

कर लेनेपर वे सहर्ष आपको सत्सङ्गके लिये छुट्टी भी दे सकते हैं।

[५४]

सादर प्रणाम और हरिस्मरण। आपका पत्र यथासमय मिल गया था। समय कम मिलनेके कारण उत्तर देनेमें कुछ विलम्ब हो गया है।

मेरे लिखनेपर आपने भजन-स्मरणमें समय अधिक लगाना आरम्भ कर दिया, सो अच्छी बात है। आपकी दिनचर्या लिखी सो ज्ञात हुई। प्रातः सन्ध्या-नित्यकर्मके समय साधनमें मन लगानेकी विशेष चेष्टा रखनी चाहिये। इसके सिवा चलते-फिरते, खाते-पीते, उठते-बैठते एवं हरेक काम करते समय जो हमारा मन उस कामसे भिन्न दूसरी-दूसरी बातें सोचता रहता है, उन सब व्यर्थ संकल्पोंका त्याग करके हरेक परिस्थितिमें भगवान्‌को याद करनेका---उन्हींके नाम, गुण, लीला और स्वरूप-में मन लगानेका अभ्यास करना बहुत ही अच्छा साधन है।

एकान्तमें भजन करना, आसन लगाकर बैठना और भजन गाना अच्छा लगता है, लिखा सो इसे भगवान्‌की परम कृपा समझनी चाहिये।

यदि हरेक परिस्थितिमें भगवान्‌को याद रखनेका अभ्यास परिपक्व होकर निरन्तर भगवान्‌का स्मरण स्वाभाविक होने लग जाय तो फिर भगवान्‌के दर्शनमें अधिक विलम्ब नहीं हो सकता।

भगवान्‌की दया तो सभी जीवोंपर है और वह है भी

अपार; परंतु जीवको उसका अनुभव नहीं होता। उसका अनुभव ऊपर लिखे साधनसे बहुत ही शीघ्र हो सकता है।

आपके अन्य प्रश्नोंका उत्तर इस प्रकार है—

(१) मन जैसे एकान्तमें भगवान्‌में लगता है, वैसे हरेक अवस्थामें लगनेका उपाय ऊपर बताया ही गया है; वैसा अभ्यास करनेसे लग सकता है। और भगवान्‌का स्मरण होनेपर मनका निर्मल हो जाना तो स्वाभाविक ही है। किंतु यह सब मजा लेनेके लिये करनेकी अपेक्षा अपने परम सुहृद् भगवान्‌के दर्शनके लिये किया जाना अत्युत्तम है।

(२) अपने भजन-अभ्यासका परिचय अपनी ओरसे किसीको नहीं देना चाहिये और अपने मनमें ऐसा अभिमान भी नहीं करना चाहिये कि मैं एकान्तमें भजन करता हूँ, मेरा मन भगवान्‌में लगता है, अतः मैं अच्छा हूँ और दूसरे लोग बुरे हैं।

(३) नियमित भोजन, शयन और मौनसे तो लाभ ही है; इसमें हानिकी कोई बात नहीं है। संयम हरेक अवस्थामें उत्तम है, विलासिता हर अवस्थामें हानिकर है। संयम गृहस्थधर्मके विरुद्ध नहीं है। गृहस्थ तो संयम सीखनेकी पाठशाला है।

(४) धर्मयुद्धकी सहायताके लिये मन्त्र-जपकी संख्याका कोई निश्चित नियम नहीं है। जितना आप उचित समझें, उतना ही कर सकते हैं।

---

[५५]

प्रेमपूर्वक हरिस्मरण !

आपका कार्ड मिला, समाचार मालूम हुए। आप

'कल्याण'के ग्राहक हैं, धार्मिक पुस्तकें पढ़नेका आपको शौक है–यह भगवान्‌की कृपा है।

आपकी शङ्काका उत्तर इस प्रकार है कि इस जन्मकी भी बहुत-सी बातें हमें याद नहीं रहतीं, कोई-कोई खास बात ही याद रहती है; वह भी उसका कोई निमित्त आनेपर ही याद आती है। अतः पूर्वजन्मकी स्मृति न रहना कोई आश्चर्य नहीं है; क्योंकि पूर्वमनुष्यजन्मके बाद अनेक पशु-पक्षी और जड-योनियोंमें यह जीव कर्मानुसार घूमता रहा है, इस कारण कालका अधिक व्यवधान हो जानेसे स्मृति लुप्त हो सकती है। इसपर आप कहेंगे कि इस शरीरसे पहले यह जिस किसी भी योनिमें था, उसकी स्मृति तो इसे होनी चाहिये, सो ऐसा नियम नहीं है। कारण, जड-योनियोंमें अन्तःकरण तमोगुणसे आवृत रहता है, इस कारण उनमें भोगी हुई और देखी-सुनी हुई बात याद नहीं रहती--जैसे निद्रा, मूर्च्छा, अज्ञानावस्था और गर्भकी बातें याद नहीं रहतीं।

---

[५६]

प्रेमपूर्वक हरिस्मरण !

आपका कार्ड यथासमय मिल गया था। उत्तर देनेमें विलम्ब तो समय कम मिलनेके कारण प्रायः हो ही जाता है।

आपके प्रश्नोंका उत्तर क्रमसे इस प्रकार है—

(१) कबीरजीके बीजकके एक पदका अर्थ पूछा सो शब्दार्थ तो सीधा है, उसमें कुछ पूछनेकी बात नहीं है। रही भावार्थकी बात सो उन्होंने किस भावसे लिखा, यह तो

वे ही जानें। पर शायद यह भाव हो सकता है कि पण्डित बने हुए लोग उपदेश तो देते हैं, पर उसके अनुसार आचरण नहीं करते; अतः उनका कहना व्यर्थ है। इसी प्रकार बिना प्रेम और श्रद्धाके खाली रामनाम कहनेसे मुक्ति वैसे ही नहीं होती, जैसे खीर-खीर कहते रहनेपर भी भोजन किये बिना मुख मीठा नहीं होता और राव कहनेसे कोई राजा नहीं हो जाता। सुख तो सभी चाहते हैं, पर साधन बिना नहीं मिल सकता। इस भावको लेकर कबीरजीका व्यक्तिगत कहना है। वास्तवमें नाममें जो वस्तु-शक्ति है, उससे तो लाभ होता ही है। गोस्वामीजीने कहा है—

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ ॥

(२) हिमालयमें तो अर्जुनका शरीर गला था, न कि आत्मा। अर्जुनकी आत्मा तो गीताका ज्ञान मिलते ही मुक्त हो गयी थी। वे तो भगवान्‌के परम भक्त थे। दिव्यलोकमें भी भगवान्‌के ही साथ रहे।

(३) रामायणमें 'मैं' और 'मेरा' को माया बताया, सो ठीक ही है। गीतामें भी अहंकार और ममताके त्यागका आदेश भगवान्‌ने जगह-जगह किया है, अतः सिद्धान्तमें कोई भेद नहीं है। भगवान्‌ने जो अपने लिये जगह-जगह 'अहम्' पदका प्रयोग किया है, वह तो ठीक ही है; क्योंकि वे सर्वसमर्थ हैं। वे लोगोंको समझानेके लिये 'अहम्' पदका प्रयोग करते हुए भी अहंकारसे सर्वथा निर्लिप्त हैं। सब कुछ करते हुए भी वास्तवमें कुछ नहीं करते, यही तो उनकी महिमा है (गीता ४।१३)।

(४) कुम्हार जाति हमारी ओर तो शूद्रोंमें मानी जाती है।

(५) वेदमन्त्रोंद्वारा विवाह और श्राद्धादि क्रियाकर्म करनेका अधिकार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—इन तीनों वर्णोंको ही है, शूद्रोंको नहीं है; यही इनका भेद है।

(६) तुलसीदासजीकी चौपाईका अर्थ स्पष्ट है। तेली, कुम्हार, श्वपच, कोल और किरातोंकी गणना निम्न वर्णमें अर्थात् शूद्रवर्णमें ही है।

(७) अपनी-अपनी जातिके कर्मोंमें हिंसा तो सभीमें होती है, कोई भी निर्दोष नहीं है। वैश्यका कर्म जो खेती है, उसमें तो जीवोंकी हिंसाका कोई ठिकाना ही नहीं रहता। अतः किसीके जातीय कर्ममें हिंसा होना उसकी नीचताका द्योतक नहीं है। वर्णोंका भेद तो जन्म और कर्म--दोनोंसे होता है।

आपके प्रश्नोंका उत्तर लिख दिया है। संभव है, इससे आपको किसी अंशमें संतोष हो।

---

[५७]

प्रेमपूर्वक हरिस्मरण! आपका पत्र मिला, समाचार मालूम हुए। आपके प्रश्नोंका उत्तर क्रमसे इस प्रकार है—

(१) जगन्माता जानकी (सीताजी) किसीके गर्भसे उत्पन्न नहीं हुई थीं। जमीनमें राजा जनक और उनकी स्त्री यज्ञके लिये भूमि तैयार करनेके लिये हल चला रहे थे, उस समय वे जमीनसे प्रकट हुई थीं और अन्तमें भी भगवान् श्रीरामके यज्ञमें सबके देखते-देखते वे भूमिमें ही लुप्त हो गयी थीं।

(२) मुक्त होनेके बाद अभेदमार्ग (वेदान्त) के सिद्धान्तानुसार आत्मा और ईश्वरमें कोई भेद नहीं रहता, परंतु भक्तिमार्गके अनुसार भेद रहता है। ईश्वर सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ और सर्वदिव्यगुणसम्पन्न हैं। मुक्त आत्मा बद्ध जीवोंकी अपेक्षा अत्यन्त विलक्षण होनेपर भी सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् नहीं हो सकता।

(३) ईश्वर (परमात्मा) सबकी उत्पत्ति, पालन और संहार करनेवाले इसलिये हैं कि उन्हींकी प्रकृति उन्हींका बल पाकर यह सब करती है; और वे इन सबके कर्ता इसलिये नहीं हैं कि स्वयं असङ्ग हैं। अतः भगवान्ने गीतामें कहा है कि मुझे सब कुछ करते हुए भी तुम अकर्ता ही समझो (४। १३)।

(४) हनुमान्जीका स्वरूप वंदरकी आकृतिका था। रावणका स्वरूप दस मुख और बीस भुजाओंवाला विचित्र ढंगका राक्षसकी आकृतिका ही था। वैसा कोई दूसरा तो है नहीं, फिर मैं दिखाकर कैसे समझाऊँ।

(५) गणेशजीका स्वरूप जैसा मूर्तियोंमें, चित्रोंमें देखकर समझमें आता है, वैसा ही होना चाहिये। वैसे तो 'गणेश' नाम परमेश्वरका भी है। इनकी उत्पत्तिका वर्णन पुराणोंमें युगभेदसे कई प्रकारसे आता है। सभी बातोंपर विश्वास करना चाहिये। कल्पभेदसे भिन्न-भिन्न वर्णन मान लेनेपर कोई शङ्का नहीं रहती तथा पार्वती साक्षात् भगवती हैं, वे सब कुछ कर सकती हैं। अतः कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

[५८]

प्रेमपूर्वक हरिस्मरण ! आपका कार्ड गीताप्रेसके द्वारा

मिला । समाचार मालूम हुए । आपने कार्डमें अपना पूरा पता नहीं लिखा, अतः यह उत्तर आपके पास पहुँचेगा या नहीं, इसमें सन्देह है । आपके प्रश्नोंका उत्तर इस प्रकार है—

(१) असम्प्रज्ञात समाधिके जो दो भेद बताये गये हैं, वे समाधिके स्वरूपभेद नहीं हैं । स्वरूप तो दोनोंका एक ही होता है । दोनोंके अधिकारियोंका भेद है । अभिप्राय यह है कि जो अधिकारी पूर्वजन्ममें 'महाविदेहा' स्थितितक या 'प्रकृतिलय' स्थितितक साधन कर चुका है, ऐसे योगभ्रष्ट योगीका तो असम्प्रज्ञात योग विना किसी साधनके मनुष्यजन्म पाते ही अपने-आप सिद्ध हो जाता है । इसलिये उसको 'भवप्रत्यय' कहते हैं । अर्थात् भव--उत्पत्ति ही जिस ज्ञानका यानी पूर्ण समाधिका कारण है, उसको भवप्रत्यय कहते हैं । और जिसको प्राप्त करनेके लिये श्रद्धादिक उपाय आवश्यक होते हैं, जिस साधकका पूर्वजन्मका विशेष अभ्यास नहीं है, उसको योग-शास्त्रमें बताये हुए प्रकारसे श्रद्धापूर्वक साधन करनेपर क्रमसे समाधिलाभ होता है; अतः उसका नाम 'उपायप्रत्यय' है । फिर साधनकी मात्रा और वैराग्यकी त्रुटि या अधिकताके भेदसे इसके और भी बहुत भेद हो जाते हैं, जिनका विस्तृत वर्णन योगदर्शनके समाधिपादमें सूत्र १७ से २० तक देखना चाहिये ।

(२) जिस ईश्वर-प्रणिधानसे सूत्रकारने समाधिकी सिद्धि बतायी है, उसके लक्षण भी उन्होंने वहीं बता दिये हैं—तज्जपस्त-दर्थभावनम्' (योग० १ । २८) । अर्थात् ईश्वरके वाचक प्रणवका जप और उसके वाच्य सच्चिदानन्दघन सर्वशक्तिमान् परमेश्वरका ध्यान—इसीको ईश्वर-प्रणिधानकी व्याख्या समझनी चाहिये ! ईश्वर-प्रणिधानका अक्षरार्थ सर्वतोभावसे ईश्वरके

शरणापन्न हो जाना है। उपर्युक्त जप-ध्यान उसके अन्तर्गत हैं। ईश्वर सर्वशक्तिमान् है, उसकी कृपासे दोनों प्रकारकी समाधि-का सिद्ध हो जाना कौन-सी बड़ी बात है।

(३) योगदर्शनमें वर्णित यम-नियमोंमेंसे किसी एककी पूर्ण सिद्धि कर लेनेपर दैवीसम्पदाके सब गुण तो शायद न भी आ सकें, परंतु बहुत-से तो आ ही जाते हैं। दैवी सम्पदाके सभी गुणोंमें ऐसी विशेष शक्ति है, जिससे वे अपने साथियोंको अपनी ओर आकर्षित करते रहते हैं।

दैवी गुणोंका सञ्चय और आसुरी स्वभावका परिहार करनेके लिये संत पुरुषोंका सत्सङ्ग करके उनके आज्ञानुसार साधन करना चाहिये। केवल सङ्गमात्रसे तो कोई अत्यन्त श्रद्धालु ही लाभ उठा सकता है, हरेक साधक नहीं। उनके आज्ञानुसार साधन करनेपर तो हरेक लाभ उठा सकता है। अतः जप, तप, ध्यान, आत्म-संयम आदि साधनोंका करना ही अच्छा है; उसमें यदि संत पुरुषोंके उपदेशका सौभाग्य भी मिल जाय तो साधन और भी सुगम हो जाता है यानी साधनकी बहुत-सी कठिनाइयाँ दूर होकर मार्ग सरल हो जाता है।

[५९]

प्रेमपूर्वक हरिस्मरण ! आपका पत्र मिला। समाचार मालूम हुए। भगवान् सबके हृदयमें विराजमान हैं, अतः सब जीवोंको सुख पहुँचाना ही भगवान्की सेवा है। मैं तो एक साधारण मनुष्य हूँ। मेरी सेवामें क्या रक्खा है। मुझे पिता

कहना उचित नहीं है, मुझे तो अपने मित्र या भाईके ही तुल्य समझना चाहिये।

आपको भगवान्‌की आरती, पद और गजल आदि अच्छे लगते हैं, चलते-फिरते भी मन उनमें लगा रहता है, दूसरोंसे बातचीत करते समय भी मन उधर रहता है—इसे भगवान्‌की परम दया समझना चाहिये। प्रभाती आदि रागोंके गानेमें समयका नियम नहीं रहता तो कोई हानि नहीं है। प्रेममें कोई नियम नहीं है, भगवान् तो नियमकी अपेक्षा प्रेमका अधिक आदर करते हैं। अतः उनके अप्रसन्न होनेकी कोई बात नहीं है।

भगवान्‌को भला-बुरा कहनेकी आवश्यकता नहीं है। वे जो कुछ करते हैं सो ठीक ही करते हैं। हमारी आवश्यकताको पूरी करनेमें जो देर करते हैं, उसमें भी हमारा हित ही भरा रहता है। अतः उन्हें भला-बुरा कहना उचित नहीं है। यद्यपि भगवान् प्रेमसे कही हुई बातपर अप्रसन्न नहीं होते, तो भी कहनेवालेको तो उसका सुधार करना ही चाहिये।

भगवान्‌से संसारकी तुच्छ वस्तुओंके लिये याचना नहीं की जाय तो और भी अच्छा है; क्योंकि इन वस्तुओंकी माँग पूर्ण होनेसे ही हम सन्तुष्ट हो गये तो फिर वे स्वयं हमें कैसे मिलेंगे। ये सब वस्तुएँ तो क्षणिक हैं, इनसे क्या होना है।

[६०]

आपका पत्र मिला। समाचार मालूम हुए। मनका निग्रह होना कठिन अवश्य है; परन्तु अभ्यास और वैराग्यसे हो सकता है। भगवान्‌की दयासे तो सब कठिनाई दूर हो सकती है।

प्रेम बढ़नेका उपाय पूछा, सो भगवान्‌के गुण-प्रभावकी बातें सुननेसे और उनमें विश्वास करनेसे प्रेम बढ़ सकता है।

ध्यानका प्रकार पूछा, सो 'सच्चे सुखकी प्राप्तिका उपाय' नामक पुस्तकमें तथा गीता अध्याय ६ श्लोक १४ के गीतातत्त्वाङ्ककी टीकामें देख लेना चाहिये। उनमेंसे जो आपको रुचिकर हो, उसी प्रकारसे करनेका प्रयत्न करना चाहिये।

मुझसे मिलनेकी इच्छा लिखी, सो आपके प्रेमकी बात है। भगवान्‌से मिलनेकी इच्छा प्रबल होनी चाहिये।

भगवान्‌के दिव्य ज्ञानका रहस्य तो भगवान् ही जानें, मैं क्या लिख सकता हूँ। × × × ×।

ध्यानावस्थामें भगवान्‌से बातचीत करनेका ढंग उस पुस्तकमें बतलाया हुआ है। उसी प्रकार आप ही अपने मनमें प्रश्न करें और भगवान्‌से उसका उत्तर अपने ही संकल्पसे सुनें।

जीव-ईश्वरकी एकता ब्रह्मज्ञानसे हो सकती है। इसका अनुभव कोई वाणीद्वारा नहीं बता सकता।

आपके प्रश्नोंका उत्तर क्रमसे इस प्रकार है--

(१) संसारको असार, दुःखरूप और कल्पित समझ लेनेसे या पूर्ण विश्वासपूर्वक मान लेनेसे सच्चा वैराग्य हो सकता है।

(२) भगवान्‌की कृपाका ज्ञान सत्सङ्ग करनेसे और सत्सङ्गमें सुनी हुई बातोंपर दृढ़ विश्वास करनेसे हो सकता है। भगवान्‌को निरन्तर याद रखनेका प्रयत्न करना ही अच्छे-से-अच्छा पुरुषार्थ है।

(३) ईश्वरके दर्शन और प्राप्तिका सहज उपाय सर्वभावसे उनके शरणापन्न होना है।

(४) संसारके भोगोंमें आसक्त रहनेके कारण और भगवान्‌के महत्त्वका ज्ञान न होनेके कारण तथा उनके विषयमें सुनी हुई बातोंपर विश्वास न होनेके कारण मनुष्य ईश्वरकी आवश्यकता नहीं समझता। संसारकी असारता और भगवान्‌के गुणानुवाद भगवान्‌के भक्तोंसे सुनना और उनपर विश्वास करना ही उस आवश्यकताके समझनेका उपाय है।

(५) बड़ी-बड़ी बातें तो मनुष्य मान-बड़ाईके लिये कर लेता है; परन्तु श्रद्धा न होनेके कारण स्वयं साधन नहीं कर पाता।

(६) सच्चे महात्माके प्रति अविश्वास होनेका कारण मनकी मलिनताके सिवा और क्या हो सकता है।

(७) उद्धार भगवान्‌की कृपासे ही होता है, पुरुषार्थ तो केवल निमित्तमात्र है। जो भगवान्‌की कृपाका रहस्य समझ जायगा, वह भगवान्‌को भूल ही कैसे सकता है। और भगवान्‌को याद रखनेके सिवा भगवत्प्राप्तिके लिये पुरुषार्थ ही क्या हो सकता है। अतः यह प्रश्न ही नहीं बनता कि पुरुषार्थ न करे तो केवल भगवत्कृपा समझते रहनेसे उद्धार हो सकता है या नहीं।

(८) ईश्वरको सर्वशक्तिमान्, सबसे बड़ा और परम सुहृद्—हेतुरहित दयालु और प्रेमी मान लेनेपर सच्ची परायणता हो जाती है।

(९) भगवान् सबके हृदयमें विराजमान हैं, वे ही

सबके प्रेरक हैं, इस रहस्यको भलीभाँति समझकर उसपर विश्वास कर लेनेसे मनुष्य भगवान्‌का यन्त्र बन सकता है। गीतातत्त्वाङ्कमें अध्याय १५ श्लोक १५ और अध्याय १८ श्लोक ६१ का अर्थ देखना चाहिये।

(१०) भगवान्‌के सच्चे भक्तोंके दर्शनोंकी लालसा तीव्र होनेसे उनके दर्शन हो सकते हैं।

(११) भगवान्‌की अनन्य भक्ति ही गुणातीत होनेका सरल उपाय है। गीता अध्याय १४ श्लोक २६ का अर्थ देखना चाहिये।

---

[६१]

आपका पत्र यथासमय मिल गया था, परन्तु पत्र उर्दूमें लिखा हुआ था, मैं उर्दू जानता नहीं और समय भी कम मिलता है, इस कारण उत्तर देनेमें बहुत देर हो गयी है।

आपका दिल दुनियासे उकताकर भगवान्‌की ओर लगा, सो यह भगवान्‌की बड़ी दया है। पुस्तकोंमें श्रीगीता और श्रीरामायण सबसे उत्तम हैं, इनके पढ़नेमें और समझनेमें समय लगाकर इनके उपदेशानुसार अपना जीवन बनाया जाय तो बहुत ही शीघ्र परम शान्ति मिल सकती है।

(१) आपने लिखा कि मैं 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक सङ्घ' का एक अच्छा स्वयंसेवक था, सो वह तो आपको अब भी रहना चाहिये। अर्जुन भी तो योद्धा था। उसने तो भयानक युद्धके समय ही गीताका उपदेश प्राप्त किया था और भगवान्‌के आज्ञानुसार काम करके परम शान्ति लाभ की थी; फिर आप

इतना डरते क्यों हैं ? सबकी भलाईमें अपनी भलाई सन्निहित है । स्वार्थ-बुद्धि तो हरहालतमें बुरी है । स्वार्थ-त्यागपूर्वक किया हुआ हरेक काम आध्यात्मिक है ।

आपने सङ्घमें हिस्सा लेनेके विषयमें मेरी राय पूछी, सो मेरी समझमें सङ्घमें हिस्सा लेना आजकलके समयानुसार उचित है, पर उसमें आसक्त होना अच्छा नहीं । नास्तिक लड़कोंका सङ्ग नीति-निर्वाहकी बुद्धिसे करना चाहिये, उनके सिद्धान्तोंको आदर नहीं देना चाहिये । यदि हो सके तो भगवान्‌में उनकी भी जिस प्रकार श्रद्धा बढ़े, वे भी भगवान्‌के भजन-स्मरणमें लग जायँ---ऐसी चेष्टा करनी चाहिये ।

(२) दूसरी बात आपने पूछी कि कर्मयोग और भक्तियोगमें कौन-सा श्रेष्ठ है, सो ये दोनों ही उत्तम हैं । इनमें कोई बड़ा-छोटा नहीं है । जिसका प्रेम और श्रद्धा जिस साधनमें हो, उसके लिये वही उत्तम है । कर्मयोगमें भक्ति साथ रह सकती है; इन दोनोंका अनुष्ठान एक साथ हो सकता है ।

आपकी यह समझ कि 'गृहस्थमें आदमी फँस जाता है, उसका दुनियासे निकलना कठिन हो जाता है'—मेरी समझसे ठीक नहीं है; क्योंकि फँसानेवाला और निकालनेवाला कोई भी आश्रम नहीं है, साधक स्वयं ही अपने स्वभावसे फँसता है और निकल जाता है । फँसनेमें कारण उसकी आसक्ति है और निकलनेमें कारण विवेक और अनासक्ति है ।

वर्तमानमें आप ब्रह्मचारी रहना चाहते हैं तो अच्छी बात है, अपने घरमें रहते हुए भी तो आप ब्रह्मचर्यका पालन कर ही सकते हैं ।

जबतक आत्मसाक्षात्कार न हो, तबतक आप कुछ नहीं करना चाहते यह ठीक है, परन्तु आत्मसाक्षात्कारके लिये जो अवश्य-कर्तव्य है, उसको बिना किये आत्मसाक्षात्कार होगा भी कैसे ? इसमें निराशाकी कोई बात नहीं है। आप अपने योग्यतानुसार जो कुछ भी उचित काम करें, निष्कामभावसे अनासक्त होकर करें, यही तो आत्मज्ञानका उपाय है। कर्म छोड़नेसे ज्ञान थोड़े ही मिलता है। भगवान्‌का भजन-स्मरण तो करना ही चाहिये, सो वह कर्तव्यकर्म करते हुए भी सरलतासे किया जा सकता है। आपका दिल पढ़ाईमें न लगनेका कारण क्या है, यह समझाना चाहिये।

(३) आपने अपने दूसरे मित्रका परिचय लिखा सो ज्ञात हुआ। उनके दिलमें भी मुक्तिकी लालसा हुई सो बड़े सौभाग्यकी बात है, पर मुक्ति पानेका उपाय घर-बार छोड़ना नहीं है। घर-बार छोड़नेवालोंमेंसे तो बहुत-से गृहस्थोंकी अपेक्षा भी अधिक संसारके कीचड़में फँसे हैं और अपना जीवन पापमय बिता रहे हैं। अतः आपको और आपके मित्रको भी घरमें रहकर यथायोग्य कर्म निःस्वार्थभावसे करते हुए ही भजन-ध्यानमें मन लगाकर मुक्ति-प्राप्तिका मार्ग ढूँढ़ना चाहिये और इसीकी चेष्टा करनी चाहिये।

भगवान्‌के यहाँ तो प्रेमकी कीमत है; सांसारिक गुणोंकी या रूपकी नहीं। वे आपको या आपके साथीको सांसारिक योग्यताकी अधिकता या न्यूनताके कारण अच्छा नहीं मानेंगे, वे तो आपके भावका आदर करेंगे। दोनोंमेंसे जिसके भाव और आचरण उत्तम होंगे, उसीको उत्तम मानेंगे।

यह बात ठीक है कि जिन लड़कोंमें कुछ अच्छाइयाँ बिना

परिश्रमके या थोड़े-से निमित्तमात्र परिश्रमसे ही आ जाती हैं, वह पूर्वजन्मके अभ्यासका फल है; पर इसका यह अर्थ नहीं कि वैसी अच्छाइयाँ नया परिश्रम करनेपर नहीं मिल सकतीं। मनुष्य परिश्रम करके स्वयं भगवान्‌को पा सकता है, उनकी-जैसी शक्ति प्राप्त कर सकता है, फिर साधारण शक्तियोंकी तो बात ही क्या है।

(४) स्वामी श्रीदयानन्दजीने ईश्वरको पा लिया था या नहीं, यह तो वे ही जानें। मैं तो इतना ही कह सकता हूँ कि दूसरे संतोंपर आक्षेप करना उचित नहीं, अतः यह काम उन्होंने ठीक नहीं किया।

(५) आपका यह लिखना कि अबतक जितने भी बड़े लोगोंके जीवन-चरित्र पढ़े हैं, उन सब लोगोंकी माताएँ उनकी छोटी उम्रमें ही मर गयी थीं—सो यह कैसे हो सकता है। क्या आपने श्रीशङ्कराचार्यजीका जीवनचरित्र नहीं पढ़ा? उनकी माता तो संन्यास लेनेके बाद गुजरी थीं। गोपीचंदकी माताने भी अपने लड़केको उपदेश देकर योगी बनवाया था। श्रीराम और लक्ष्मणकी माताओंने बहुत अधिक उम्र पायी थी। और भी बहुतोंकी माताओंने बड़ी उम्र पायी है।

(६) जब कि आप हिंदी अच्छी तरह पढ़ सकते हैं, बोल सकते हैं और समझ सकते हैं, तब आपको उचित है कि मुझे आप हिंदी भाषामें ही पत्र लिखा करें।



[६२]

प्रेमपूर्वक हरिस्मरण।

आपका पत्र यथासमय मिल गया था, परन्तु अवकाश

न मिलनेके कारण उत्तर देनेमें विलम्ब हो गया। यह पत्र कल्याण-कार्यालयमें जाकर मेरे पास आया है, इस कारण भी मुझे प्राप्त होनेमें बहुत विलम्ब हुआ है।

आपने अपनी इच्छा और परिस्थितिका वर्णन किया सो ज्ञात हुआ। आपको द्विरागमनकी प्रथा अपने कुटुम्बकी प्रसन्नताके लिये सहर्ष पूरी कर लेनी चाहिये और मनमें किसी प्रकारका दुःख भी नहीं करना चाहिये। रही पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन करनेकी बात सो उसका उत्तर इस प्रकार है—

नैष्ठिक ब्रह्मचर्यका पालन करनेकी इच्छा और पालन करना—ये दोनों ही सौभाग्यकी बात है। यदि आपका विवाह न हुआ होता तो कोई अड़चन ही नहीं थी; परन्तु आपका विवाह बाल्यावस्थामें ही हो चुका है। अतः अब आपके लिये नीचे लिखे अनुसार कार्य करना मेरी समझमें हितकर हो सकता है।

(१) आप अपनी स्त्रीमें भी प्रेमपूर्वक ब्रह्मचर्यपालनकी भावना उत्पन्न करें और उनको अपनेसे सहमत करके दोनों ही ब्रह्मचर्यका पालन करें और घरवालोंकी निष्काम सेवा करते रहें। यह बड़ा उत्तम जीवन है। परन्तु यह होना चाहिये दोनोंकी सम्मतिसे ही।

(२) यदि आपकी स्त्री इसमें सहमत न हों या उनकी इतनी योग्यता न हो तो उस स्थितिमें आपका यह कर्तव्य हो जाता है कि महीनेभरमें एक बार या दो बार ऋतुकालके समय उनके साथ सहवास करें। वह भी अपनी भोगेच्छाकी पूर्तिके लिये नहीं, स्त्रीकी इच्छापूर्तिका अपना कर्तव्य पालन करनेके

लिये। जब स्त्रीको गर्भाधान हो जाय, तब फिर पुनः ऋतुमती न होनेतक सहवासकी कोई भी आवश्यकता नहीं है।

यहाँतक तो मैंने आपको अपनी सम्मति लिखी, अब आपके प्रश्नोंका क्रमशः अपनी बुद्धिसे शास्त्रपद्धतिके अनुसार उत्तर लिख रहा हूँ।

(१) विवाहका उद्देश्य केवल स्त्री-सम्भोग नहीं है, बल्कि गृहस्थमें रहकर घरवालोंकी, कुटुम्बियोंकी, गाँवकी, देशकी और समस्त जगत्के जीवोंकी निष्काम भावसे सेवा करके अपने परम लक्ष्य परम प्रेमी परमेश्वरतक पहुँच जाना है।

(२) विवाह कर लेनेपर भी यदि स्त्री विवेक या श्रद्धाके फलस्वरूप ब्रह्मचर्य पालन कर सके और वह इसमें सम्मत हो तो सहवासकी कोई आवश्यकता नहीं है।

(३) विषयवासना अवश्य ही बुरी चीज है। केवल स्त्री-विषयक ही नहीं, सभी इन्द्रियोंके विषयमें यही बात समझनी चाहिये। आसक्तिके बिना भी कर्तव्यपालनके लिये स्त्री-सहवास आदि कार्य किये जा सकते हैं।

इसका विशेष विवरण आप गीता अध्याय २ श्लोक ६४-६५ में 'गीतातत्त्वाङ्क'की टीकामें देख सकते हैं। विवाहके बाद सन्तानोत्पत्ति हमारा अवश्य-कर्तव्य नहीं है; क्योंकि सन्तानका होना-न-होना किसीके भी हाथकी बात नहीं है।

(४) पुत्र उत्पन्न कर देनेसे ही मनुष्यको मुक्ति नहीं मिल सकती। बिना पुत्रके भी मनुष्यको मुक्ति मिल सकती है। भीष्मजीके तो कोई पुत्र नहीं था, वे नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे। क्या उनकी मुक्ति नहीं हुई ? पुत्रवान् तो दुर्योधन भी था, पर क्या

उसकी मुक्ति हो गयी ? अतः यह समझना चाहिये कि पुत्रका होना या न होना मुक्तिसे कोई सम्बन्ध नहीं रखता।

(५) परिस्थिति-विशेषमें स्त्री-सहवास मनुष्यका धर्म बन जाता है और धर्मकी दृष्टिसे आवश्यक कर्तव्य भी हो जाता है। परन्तु ईश्वरभजनकी भाँति वह परम कर्तव्य या परम धर्म नहीं है। ब्रह्मचर्यका पालन पाप कैसे हो सकता है, वह तो बड़ा उत्तम धर्म है। आप पहले बताये हुए दो प्रकारोंमेंसे किसी एक प्रकारसे ब्रह्मचर्यव्रतका पालन कर सकते हैं। गृहस्थ-आश्रममें रहकर अनासक्तभावसे केवल अपनी ही स्त्रीके साथ नियमित सहवास करनेवाला गृहस्थ नैष्ठिक ब्रह्मचारीकी अपेक्षा किसी प्रकार भी कम—निम्नश्रेणीका नहीं है।

(६) विवाहका उद्देश्य केवल सन्तानोत्पत्ति नहीं है।

(७) आपने सन्तानोत्पत्तिको दोष प्रमाणित करनेके लिये जो दलीलें दी हैं, वे युक्तिसंगत नहीं हैं; क्योंकि नया मानव पैदा करना कोई नया जीव संसारमें उत्पन्न कर देना नहीं है। जो अनन्त जीव अनादिकालसे संसारचक्रमें घूम रहे हैं, उन्हीं-मेंसे किसी-किसीको बड़े ही सौभाग्यसे या यों कहिये भगवान्‌की दयासे मनुष्यशरीर मिलता है; क्योंकि इसी शरीरमें जीव अपने परम ध्येयको सिद्ध करता है। दूसरे सब शरीर तो केवल पूर्वकृत कर्मोंका भोग भोगनेके ही लिये हैं। किसीको मनुष्य-शरीरमें उत्पन्न कर देना आवागमनमें ढकेलना नहीं है, बल्कि आवागमनके चक्रमें पड़े हुए जीवको मनुष्य बनाकर अच्छी शिक्षा देकर आवागमनसे छुड़ा देनेका प्रयत्न करना है। अतः सन्तानोत्पत्ति करना किसी भी जीवको कष्ट देना नहीं है।

अब आपकी विशेष-विशेष विचारधाराका उत्तर क्रमसे लिखा जाता है—

(१) यह बिल्कुल ठीक है कि विवेकहीन विषयी पुरुषोंके सभी कार्य उदरपूर्ति और भोगेच्छाकी पूर्तिके लिये ही होते हैं; परन्तु विचारशील मनुष्योंके कार्यका लक्ष्य न तो उदरपूर्ति है और न भोगवासनाकी ही पूर्ति है। उनका तो हरेक कार्य, चाहे वह लोगोंके देखनेमें उदरपूर्ति ही क्यों न हो, भगवान्‌की प्राप्तिके लिये ही है। इस शरीरकी रक्षा भी अपने परम ध्येयको प्राप्त करनेके ही लिये है। इस शरीरसे मनुष्य उस अलभ्य वस्तुको प्राप्त कर सकता है, जिसे पाकर मनुष्य सदाके लिये दुःखोंसे छूटकर परमानन्दमें मग्न हो जाता है।

(२) अवश्य ही मनुष्य-जीवनका लक्ष्य मोक्षप्राप्ति है। इसीको भगवान्‌की प्राप्ति, परमानन्दकी प्राप्ति, परम शान्तिकी प्राप्ति और परम धामकी प्राप्ति भी कहते हैं। सभी मनुष्योंमें इस लक्ष्यतक पहुँचनेकी शक्ति वर्तमान है; परन्तु वे अज्ञानवश उसे भूले हुए हैं। मुक्ति किसे कहते हैं, यह न समझनेपर भी सुख सभी चाहते हैं और आत्यन्तिक सुख मुक्तिका ही पर्याय है।

(३) बालक रोटी या दूध किसे कहते हैं, यह नहीं जानता, तो भी उसे चाहता है और उसके लिये रोता या प्रयत्न भी करता है। पेट भरनेकी भूख भी सुखकी भूखके ही अन्तर्गत है; परन्तु इस बातको न समझनेके कारण वह इसे छोटी-सी भूख समझ लेता है। इसीलिये बार-बार पेट भरते रहनेपर भी भूखकी समाप्ति नहीं होती, सुख और शान्ति नहीं मिलती। उसकी भूख तो फिर भी बनी ही रहती है। इसलिये समझना

चाहिये कि पेटकी भूखकी अपेक्षा इस जीवको मुक्तिकी भूख बहुत अधिक है। अतः भगवान्‌ने तो उसके परम लक्ष्यको समझनेकी जिज्ञासा उसमें भर ही रक्खी है; परन्तु वह अनुचित रास्ते चलता है, तब दूसरा कोई क्या करे। मनुष्य-जीवन पाकर यह जीव अपने परम लक्ष्यतक पहुँच सके—इसके लिये भगवान्‌ने बहुत सुविधाएँ दी हैं। उस लक्ष्यकी ओर प्रवृत्त होनेपर यह सहजमें ही उसे पा सकता है।

(४) मुक्ति पाना ईश्वरके सृष्टि-क्रमको अवरुद्ध करना नहीं है। जीव तो असंख्य हैं, उनमेंसे मनुष्य तो बहुत ही थोड़े बनते हैं। वे यदि सब-के-सब मुक्त हो जायँ तो क्या हानि है? दूसरे जीवोंको मनुष्य बननेका अवसर मिलेगा। उनके लिये स्थान खाली होगा और वे अपनी उन्नति कर सकेंगे। यह तो सबके हितकी बात है। इसीलिये मुक्तिलाभ करना मनुष्य-शरीरका परम लक्ष्य है और वह बहुत ही उचित है। भगवान्‌ने सृष्टिकी रचना जीवोंके कर्मोंका फल भुगतानेके लिये और उनको मुक्त करनेके लिये ही की है।

(५) ईश्वरके संकल्पसे ही सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होती रहती है, पर वह होती है जीवोंके कर्मानुसार। अतः आपकी शङ्काको कोई स्थान नहीं है।

आपके प्रश्नका पूरा-पूरा उत्तर मैंने अपनी समझके अनुसार संक्षेपमें लिख दिया है। यदि इससे आपको अपने मार्गमें कुछ भी सहायता मिल जाय तो बड़ी प्रसन्नताकी बात है।



[६३]

प्रेमपूर्वक हरिस्मरण ! आपका पत्र मिला, समाचार विदित हुए। अपनेको पापी समझना तो आपकी निष्कपटताका द्योतक है। उद्धार तो भगवान् ही कर सकते हैं। मैं तो एक साधारण मनुष्य हूँ।

आपके कुटुम्बका विवरण मालूम हुआ। आपके पिताजीके आप एक ही पुत्र हैं तथापि वे आपसे अप्रसन्न रहते हैं और आपके चचेरे भाई उनको प्रसन्न रखते हैं, इससे तो स्पष्ट ही यह सिद्ध होता है कि आप सेवाकार्यमें कुशल नहीं हैं। यदि आपको उनकी अप्रसन्नताका सचमुच दुःख है तो हरेक उचित उपायसे आपको उन्हें प्रसन्न करनेका प्रयत्न करना चाहिये। आपकी पूज्या माताजी वर्तमान हों तो उनके द्वारा भी प्रयत्न करवाना चाहिये।

आपके पिताजी दिखाऊ काम और टालमटोलको अधिक पसंद करते हैं तो उनकी इच्छा है, आपको उसपर क्षुब्ध नहीं होना चाहिये। आपको उनकी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये। वे यदि ऊपरी लीपापोतीमें विश्वास करते हैं तो आप उसका परिणाम उनको शान्तिपूर्वक समझा सकते हैं, विरोध करना आपका धर्म नहीं है।

आपके स्त्री-बच्चोंका हाल मालूम हुआ। बीमारी आदि तो होती ही रहती है, यह सब तो प्रारब्धका खेल है।

आपके भजन-पूजनकी स्थितिका विवरण भी ज्ञात हुआ। जबतक मनुष्यका अन्तःकरण शुद्ध नहीं हो जाता, तबतक सात्त्विक, राजस और तामस तीन प्रकारकी वृत्तियाँ अदल-

बदल होती रहती हैं। अतः साधकको चाहिये कि राजस, तामस वृत्तियाँ जब उत्पन्न होने लगें, उसी समय सात्त्विक विचारोंसे और अभ्यासके जोरसे उनको दबा दे, उनको बढ़ने न दे। वे बढ़कर जब सात्त्विक भावको दबा लेती हैं, तब उनपर विजय प्राप्त करना कठिन हो जाता है।

क्रोधकी वृत्ति तामस, राजस मिली हुई है, सांसारिक प्रेम राजस है। इन भावोंके प्रकट होते ही भगवान्से प्रार्थना करनी चाहिये और उनके बलका सहारा लेकर रागद्वेषका नाश कर देना चाहिये।

भजन करनेसे सन्तोष नहीं होता, भजन कम होनेसे कोई वस्तु खोयी हुई-सी प्रतीत होती है, भीतरसे भगवान्की स्मृति-के लिये प्रेरणा होती है—यह सब भगवान्की महती दयाका प्रत्यक्ष चमत्कार है। ऐसा होते ही उस दयामयकी दयाका रहस्य समझकर उसके उपकारोंको याद करके गद्गद हो जाना चाहिये। उसके प्रेममें विह्वल हो जाना चाहिये।

सरकारी कामके कारण समय कम मिले तो कोई बात नहीं, भगवान्का स्मरण तो प्रेमपूर्वक हरेक काम करते हुए भी हो सकता है। अर्जुनको तो भगवान्ने अपना स्मरण करते हुए युद्ध करनेके लिये कहा था (गीता ८।७), जो बहुत ही कठिन काम था। युद्धसे कड़ा काम तो संसारमें कुछ भी नहीं है।

आलस्य और सांसारिक वस्तुओंका प्रेम तो भजनमें बाधक है ही, इन दोनोंका तो साधकको प्रबल विरोध करते रहना चाहिये। भगवान्का निरन्तर स्मरण तो भगवान्की ही दयासे

हो सकता है। उनकी दयाके रहस्यका चिन्तन करके बार-बार हर्षित होना चाहिये। मैं तो साधारण मनुष्य हूँ, मैं क्या कर सकता हूँ।

सत्सङ्गके लिये चेष्टा करनेपर भी एक महीनेका अवकाश नहीं मिला तो इसमें प्रारब्धको प्रधान मानकर सन्तोष करना चाहिये। सत्सङ्गकी इच्छा होनी भी अच्छी है। भगवान्‌के दर्शनकी इच्छा करनी चाहिये। मेरे दर्शनमें क्या रक्खा है?

आप अपने मित्रके साथ निःस्वार्थभावसे प्रेम रखते हैं सो बड़ी अच्छी बात है, ऐसे ही रखना चाहिये। उनके कमरेमें जानेसे आपको भगवान्‌की स्मृति होती है इससे तो यह प्रमाणित हो जाता है कि आपके वे मित्र भी एक बड़े सज्जन पुरुष हैं। यह भी भगवान्‌की परम दया है। वे धनवान् और आप साधारण स्थितिके हैं तो इससे क्या? आपको उनसे सांसारिक धनकी चाह तो है ही नहीं। आपका प्रेम तो उनसे भगवान्‌के लिये है, जो दोनोंको ही लाभप्रद है। सुदामाके लिये तो श्रीकृष्ण भगवान् सदैव तैयार हैं। कमी तो सुदामा बननेकी है, भगवान् श्रीकृष्ण तो सर्वत्र विद्यमान हैं। आपको ऐसे सज्जन मित्रसे प्रेम नहीं तोड़ना चाहिये, बल्कि प्रेम बढ़ाना चाहिये और उनका उपकार मानना चाहिये। साथ ही हरेक व्यवहारमें भगवान्‌की दयाका दर्शन करते रहना चाहिये।

आप सप्लाई-विभागके अन्य कर्मचारियोंकी भाँति अनिष्ट कर्म नहीं करते, यह बड़ी प्रसन्नताकी बात है।



[६४]

प्रेमपूर्वक हरिस्मरण। आपका पत्र यथासमय मिल गया था; समय कम मिलनेके कारण उत्तर देनेमें विलम्ब हुआ। आपने अन्तर्जातीय विवाहके विषयमें पूछा सो उसका उत्तर इस प्रकार है—

(१) जो नवयुवक अन्तर्जातीय विवाह चाहते हैं, वे पाश्चात्त्य सभ्यताकी चकाचौंधमें भूले हुए हैं। उनकी यह चाह भ्रममूलक है, इसलिये अच्छी नहीं है।

(२) शास्त्र इसके लिये आज्ञा नहीं देता, बल्कि निषेध करता है।

(३) इसका प्रभाव न तो वर्तमान हिंदुओंके लिये हितकर है और न भविष्यके लिये ही।

(४) ऐसे विवाह श्रीराम और श्रीकृष्णके जमानेमें भी कहीं-कहीं हो जाते थे। पर वे उचित नहीं माने जाते थे और उनकी सन्तान नीची समझी जाती थी।

(५) जाति बनायी हुई नहीं होती। जातिका सम्बन्ध जन्मसे होता है। 'जाति' शब्द ही जन्मसे बना है। जाति और जन्म दोनों ही शब्द एक ही धातुके रूपान्तर हैं। अतः यह कभी नष्ट नहीं होती। रज-वीर्यका प्रभाव अवश्य पड़ेगा। गौ, घोड़ा आदि पशुओंमें भी जातिभेद प्रत्यक्ष देखा जाता है, फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या है।

(६) महाभारत और उससे भी प्राचीन भारतमें भी जाति अवश्य थी। चारों वर्ण आपसमें विवाह नहीं करते थे।

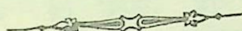
ऐसा करना शास्त्रविरुद्ध है, यह पहले ही कह चुके हैं। कहीं कोई ऐसा हुआ हो तो वह अपवाद है, नियम नहीं।

(७) गीता अध्याय १ श्लोक ४१ और ४२ में जो वर्णसंकरकी बात कही है उसका अभिप्राय तो स्पष्ट ही है कि युद्धमें पुरुष-समाजका नाश हो जायगा, तब विधवा स्त्रियाँ अधिक हो जायँगी, वे व्यभिचार करेंगी तब उनसे वर्णसंकर उत्पन्न होंगे। यह अन्तर्जातीय विवाहका नहीं, व्यभिचारका परिणाम बताया गया है; क्योंकि वैसे विवाहकी तो कोई आशङ्का ही नहीं थी।

(८) इस समय जो हरेक वर्णके लोग एक दूसरेकी जीविकाके कर्म करने लग गये हैं, यह तो कलियुगकी महिमा है। अतः लोगोंके कर्मोंमें संकरता आ गयी है। साथ ही व्यभिचार अधिक बढ़ जानेके कारण अन्तर्जातीय विवाह न होनेपर भी एक जातिके पुरुषका दूसरी जातिकी स्त्रीके साथ गुप्तरूपसे सम्बन्ध होकर जो सन्तान पैदा हो जाती है, उसके वर्णका कोई निश्चय नहीं रहता। पर उपाय भी क्या है! यदि रज-वीर्य शुद्ध होते तो एक वैश्य बालक जितना व्यापारमें कुशल हो सकता है, अनेक उपाय करनेपर भी ब्राह्मण या क्षत्रियका बालक उतना नहीं हो सकता—यह स्वाभाविक बात है। अतः अभी भी जन्ममें विशेषता देखी जाती है। श्रेष्ठ कुलका प्रभाव देखनेमें आता है। इसलिये इस गये-गुजरे जमानेमें भी अन्तर्जातीय विवाह कभी हितकर नहीं है। इसका परिणाम तो वर्ण-व्यवस्थाको नष्ट करके सभीको नीची श्रेणीमें पहुँचा देना होगा।

आपके सभी प्रश्नोंका उत्तर मैंने अपनी साधारण बुद्धिके अनुसार लिख दिया है, आशा है कि आप इनपर विचार करके लाभ उठावेंगे।

× × ×



[६५]

प्रेमपूर्वक हरिस्मरण! आपके दोनों पत्र यथासमय मिल गये थे; समय कम मिलनेके कारण उत्तर देनेमें विलम्ब हो गया, अतः क्षमा करें। मुझे पत्रोंका उत्तर देनेमें प्रायः देर हुआ करती है। आपके प्रश्नोंका उत्तर इस प्रकार है—

(१) आपने अपने वर्तमान साधनका परिचय लिखा सो मालूम हुआ। जड़ मूर्तियोंका दर्शन होना या स्वप्नमें किसीसे बातचीत हो जाना भी कोई बहुत महत्त्वकी बात नहीं है। आपको इतना जप करनेपर भी विशेष आनन्द नहीं आया, इष्टदेवका दर्शन नहीं हुआ एवं कोई उन्नति प्रतीत नहीं हुई—इसका कारण तो यह हो सकता है कि आपका जप केवल क्रियात्मक होता होगा, उसमें भावकी मात्रा बहुत कम रहती होगी, श्रद्धा भी बहुत ही कम होगी, जप करते समय मनमें दूसरे-दूसरे संकल्पोंकी भरमार रहती होगी और जपमें प्रेम न होनेके कारण वह भाररूप मालूम होता होगा।

आपने जपमें आनन्द आनेका उपाय पूछा सो जपमें प्रेमपूर्वक मन लगनेसे आनन्द आ सकता है। जिस मानसिक वृत्तिसे आप संसारकी दूसरी-दूसरी बातोंको याद करते रहते हैं, उससे भगवान्‌के दिव्य नामका और उनके

दिव्य स्वरूपका स्मरण करें तो शीघ्र ही आपका साधन उन्नत हो सकता है। संसारमें बिखरे हुए प्रेमको बटोरकर भगवान्‌में लगानेकी चेष्टा करनी चाहिये।

(२) आपने यह लिखा कि आँख बंद करते ही भगवान्‌की सूरत मेरे सामने आ जाय, ऐसा मैं चाहता हूँ। सो बड़ी अच्छी बात है; परन्तु मेरी समझमें आपकी यह चाह जोरदार नहीं है। आपको जब अन्न और जलकी चाह होती है और समयपर न मिलनेसे उसके लिये व्याकुलता हो उठती है, वैसी ही व्याकुलता आँख बंद करनेपर भगवान्‌की सूरत सामने न आनेसे नहीं होती होगी। आप अपनी चाहको इतनी प्रबल कर लें कि उसकी पूर्तिके बिना आपको चैन ही न पड़े तो उसकी पूर्ति बहुत ही शीघ्र हो सकती है।

(३) श्वासका आना-जाना नासिकाकी ओर ध्यान देनेसे तुरंत ही मालूम हो सकता है। बाहरकी वायु पेटके अंदर जाती है और भीतरकी वायु बाहर निकलती है, उस समय कण्ठ और नासिकामें उसका स्पर्श तो होता ही है, उधर मन लगाते ही आपको मालूम हो सकता है। उसके साथ मन्त्रकी भावना करते रहनेसे श्वासद्वारा जप होने लग सकता है।

आपने पहलेवाले पत्रमें यह भी लिखा था कि अब मैं केवल रामनामका ही जप करना चाहता हूँ, पर सीताका नाम छोड़ दूँगा तो सीताजी अप्रसन्न तो नहीं होंगी सो यह बात है कि उनके स्वामीका नाम लेनेवालेपर सीताजी जितनी प्रसन्न होती

हैं, उतनी अपना नाम लेनेवालेपर नहीं होतीं; क्योंकि वे तो पतिव्रताओंमें शिरोमणि हैं।

उसी तरह हनुमान्‌जी भी भगवान्‌के अनन्य भक्त हैं। इस कारण वे भी भगवान्‌का नाम लेनेवालेपर सदा ही बड़े प्रसन्न रहते हैं। मालाके अन्तमें गुरुरूपसे एक बार उनका स्मरण किया जाय तो वह भी अच्छा ही है। भाव यह रहना चाहिये कि हनुमान्‌जी श्रीभगवान्‌के प्रिय भक्त हैं। उनकी प्रसन्नतासे सहज ही भगवान्‌में प्रेम बढ़ सकता है।

[६६]

प्रेमपूर्वक हरिस्मरण ! आपका पत्र यथासमय मिला। समय कम मिलनेके कारण उत्तर देनेमें विलम्ब तो प्रायः हो ही जाता है। आपके पत्रका उत्तर इस प्रकार है—

आपने मेरे दर्शनकी इच्छा लिखी सो दर्शनके योग्य तो भगवान् हैं, उन्हींके दर्शनकी तीव्र इच्छा होनी चाहिये। मैं तो साधारण मनुष्य हूँ। आप मुझसे मिलना चाहते हैं, यह आपके प्रेमकी बात है। पत्र-व्यवहार तो आरम्भ हो ही गया है।

मनमें जो कल्पना शुभ कार्यके लिये उठे उसके अनुसार श्रद्धापूर्वक चेष्टा करनेपर वह कार्यरूपमें परिणत हो सकती है।

आपके परिवारमें परस्पर प्रेम है, किसी प्रकारका सांसारिक दुःख नहीं है, यह भी भगवान्‌की ही दया है। संसारमें जिस कार्यके लिये मनुष्य-शरीर मिला है, वह कार्य न होनेसे दुःख होना बड़ा ही उत्तम है पर इतने-से दुःखसे काम नहीं चलता। कम-से-कम इतनी व्याकुलता अवश्य होनी चाहिये, जितनी

प्यासेको जल न मिलनेसे और भूखेको भोजन न मिलनेसे होती है ।

गृहकार्यमें यदि अवकाश न भी मिले तो भी जिस समय जो कार्य करते हैं, उससे भिन्न दूसरे ही संकल्प मनमें उठते ही रहते हैं, उसकी जगह यदि भगवान्‌का स्मरण होने लगे, ऐसा अभ्यास किया जाय तो बहुत जल्दी काम हो सकता है ।

आपके भाईजीका कष्ट देखकर आपसे काम किये विना नहीं रहा जा सकता, यह तो अच्छा ही है; परन्तु भगवान्‌का भजन तो काम करते हुए भी अच्छी तरह हो सकता है ।

स्वाध्यायके लिये समय अवश्य चाहिये पर दूकानका काम करते समय भी मनुष्य बीच-बीचमें स्वाध्यायका काम कर सकता है तथा रात्रिमें सोकर सबेरे जल्दी उठनेका अभ्यास किया जाय और उस समय स्वाध्याय किया जाय या रात्रिमें सोते समय कुछ समय निकाला जाय तो भी हो सकता है ।

सत्सङ्गके लिये जब कोई श्रेष्ठ पुरुष वहाँ पधारें, तब तो समय किसी तरह निकालना ही चाहिये । रही अपनी ओरसे प्रचारकी बात, सो प्रचार तो मनुष्य स्वयं साधन करके जितना कर सकता है, उतना व्याख्यानादिसे नहीं कर सकता ।

आपके घरवालोंकी और आपकी प्रकृतिमें भेद लिखा सो प्रकृतिका भेद तो हरेक मनुष्यमें रहता ही है । इससे यह समझना कि घरमें रहकर आत्मकल्याणका काम कर लेना कठिन है—यह बहुत भारी भूल है । मनुष्य जिस परिस्थितिमें रहता है, उसीमें रहकर भी अपनी आध्यात्मिक उन्नति कर सकता

है। व्यापारके विषयमें लाभ-हानिका सम्बन्ध प्रारब्धसे है—यह बिल्कुल ठीक है। ऐसा ही विश्वास रखना चाहिये।

व्यापार और गृहकार्योंमें व्यवस्थाकी जो कमी है, उसकी पूर्ति करनेकी चेष्टा अवश्य करनी चाहिये। यह तो मनुष्यका कर्तव्य ही है। आजकल विश्वासी आदमी कम मिलते हैं यह बिल्कुल ठीक है। पर उपाय क्या, समय ही ऐसा है।

अवकाश मिलनेपर नये व्यापारकी योजनाके चिन्तनमें समय लगाना घरवालोंको अच्छा मालूम होता है सो ठीक है परन्तु समय तो आपकी रुचिके अनुसार ही लगेगा। जब आप उनकी रुचि रखते हैं, तब उनको भी आपकी रुचिमें सन्तोष करना ही पड़ेगा—यह न्याय है। अतः उनकी नीयतपर दोषारोपण नहीं करना चाहिये। इस विषयमें आपका मन अयुक्त निर्णय दे सकता है। दोष है मनका और मँढ़ देता है दूसरोंके सिरपर।

जो काम प्रेमपूर्वक नहीं किया जाता, वह कम स्मरण रहता है—यही स्मृतिकी कमीका कारण है। अतः साधनमें श्रद्धा और प्रेम बढ़ानेकी चेष्टा करनी चाहिये।

हृदयकी कठोरताका यदि सचमुच दुःख हो तो भगवान्‌के सामने करुणाभाव अवश्य ही होना चाहिये; क्योंकि यदि मनुष्यका यह विश्वास हो कि कोई एक ऐसी शक्ति है जो मेरी प्रार्थना सुनती है और वह परम दयालु है तो उसके सामने मनुष्यके मनमें करुणाभाव आये बिना रह ही नहीं सकता।

आपने एक घरानेके कुटुम्बमें झगड़ा रहनेकी बात लिखी और यह भी लिखा कि एक बहू और उसके पति इस कारण

बड़े ही दुखी हैं, उन्हें क्या करना चाहिये। सो मेरी समझमें तो वे पति-पत्नी प्रेमपूर्वक घरवालोंसे अलग होकर भी शान्ति-पूर्वक अपना निर्वाह कर सकें तो कोई बुरी बात नहीं है।



[६७]

आपका पत्र मिला! आपके प्रश्नोंका उत्तर इस प्रकार है—

(१) आपकी एक दूकानदारसे बातचीत हुई। नारियल-की रस्सीको भिगोकर रखनेके विषयमें उसने आपको जवाब दिया, वह एक युक्तिसे तो ठीक है, परंतु हरेक काममें काम करनेवालेकी नीयत देखी जाती है। यदि उस दूकानदारने लोगोंकी आँखोंमें धूल झोंकनेकी नीयतसे ऐसा किया हो तो वह पहले करे चाहे पीछे, काम तो दोषयुक्त ही है। यदि उस वस्तुकी सुरक्षाके लिये उसमें पानी देना अनिवार्य हो तो कोई दोष नहीं है; किंतु ग्राहकको यह बात स्पष्ट बतला देनेपर दूकानदार दोषसे बच सकता है।

(२) वस्तुका भाव कम-ज्यादा बोलनेके विषयमें पूछा सो पहले एक भाव बोलकर पीछे कम भावमें बेचनेमें वाणीके झूठका दोष तो आता ही है। व्यापारकी दृष्टिसे वैश्यके लिये व्यापारमें ऐसे झूठके लिये कुछ छूट है, पर छूट न लेनेवाला उत्तम है।

आपने इस विषयमें लाभ-हानिकी दलील पेश की सो लाभ-हानि तो प्रारब्धके अनुसार होती है। मनुष्यकी बुद्धि इसमें काम नहीं कर सकती। तौलमें पूरा लिया-दिया जाता है, यह तो बड़ी अच्छी बात है।

(३) समयानुसार वस्तुका भाव कम-ज्यादा करनेमें कोई

दोष नहीं है। पर ऐसा करनेमें यदि सबकी भलाई भी साथ-साथ सोच ली जाय तो और भी उत्तम बात है।

(४) भादों मासमें होनेवाले भजन और कीर्तनके विषयमें पूछा सो भजन यानी पद-कीर्तन यदि भावपूर्ण हो तो वह नाम-कीर्तनसे कम नहीं है। पर नामकीर्तनकी भाँति सभी पद भावपूर्ण नहीं होते, अतः पदकीर्तनमें चुने हुए पदोंका ही गान होना चाहिये। पदगानको सर्वथा बंद नहीं करना चाहिये। कीर्तन बैठकर करनेमें और खड़े होकर करनेमें कोई अन्तर नहीं है, जिसमें सब प्रसन्न हों, वैसे ही करना चाहिये।

[६८]

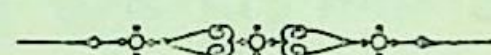
प्रेमपूर्वक हरिस्मरण। आपका पत्र मिला, समाचार ज्ञात हुए। आपने मुझे गुरुजी लिखा सो ऐसा नहीं लिखना चाहिये। मैं न तो गुरु बननेके योग्य हूँ, न मेरा अधिकार ही है। अतः क्षमा करियेगा।

सट्टेके व्यापारके विषयमें आपने पूछा सो सट्टा तो वास्तवमें कोई व्यापार ही नहीं है। इसमें जितने आदमी लगते हैं, उनमेंसे अधिकांश सब निकम्मे और संसारके लिये भाररूप होते हैं; क्योंकि सट्टेमें न तो किसी वस्तुकी पैदावार होती है और न एक वस्तुको एक जगहसे दूसरी जगह पहुँचा-कर किसीकी आवश्यकता ही पूर्ण की जाती है। एक व्यक्तिकी सम्पत्ति दूसरेके पास उलट-पलट होती रहती है और उन लोगोंके घरोंमें व्यर्थका खर्च होता रहता है। उसका घाटा दुनियामें पड़ता है और बहुतसे घरानोंका सत्यानाश हो जाता

है। बहुतसे लोग मुफ्तके पैसोंसे शरीर पालकर दुराचारी और फजूलखर्ची बन जाते हैं। इसी प्रकार सट्टेके कारण बहुतसे बुरे परिणाम होते हैं। इसका आप और क्या स्पष्टीकरण चाहते हैं सो लिखना चाहिये। सट्टेमें और-और व्यापारोंसे कमाया हुआ धन भी नष्ट हो जाता है। सट्टा किसी प्रकारसे भी धनोपार्जनमें हेतु नहीं है। केवल अज्ञानसे ही लोगोंने इसे व्यापार समझ लिया है।

आपने सट्टेका व्यापार बंद करनेका विचार किया लिखा, सो बड़ी अच्छी बात है। कोई ऐसा व्यापार करना चाहिये, जिससे किसी तरह भी हो, दूसरोंकी सेवा की जा सके अर्थात् संसारके लोगोंकी आवश्यकता पूर्ण करनेमें सहायता दी जा सके।

शेष भगवत्कृपा। भजन-साधनका पूरा ध्यान रखना चाहिये।



[६६]

सादर ॐ नमो नारायण। आपका कृपापत्र कल्याण-सम्पादकके नाम आया था। उन्होंने आपके द्वारा किये गये प्रश्नोंका मेरे लेखसे सम्बन्ध होनेके कारण उसे मेरे पास भेज दिया। अतः जैसा कुछ समझमें आया, वैसा अपना मन्तव्य आपकी सेवामें भेजा जाता है। वैसे तो आप-जैसे पूज्य जनोंके समक्ष इन विषयोंपर कुछ निवेदन करना मेरे लिये धृष्टता ही है, किंतु आपकी आज्ञाको शिरोधार्य कर कुछ निवेदन किया जाता है। उत्तर भिजवानेमें शरीरकी अस्वस्थता तथा कार्यकी

अधिकताके कारण विलम्ब हो गया है। आशा है, इसके लिये आप क्षमा करेंगे।

× × ×

प्रश्न—यदि जीव नाना हैं, तो एक ब्रह्मके साथ एकता कैसे होगी ?

उत्तर—इसका उत्तर यह है कि जीवोंका नानात्व मायाके सम्बन्धसे है, वास्तविक नहीं है। माया अविद्याको कहते हैं और विद्याके द्वारा अविद्याका नाश हो जानेपर जीव, जो कि ब्रह्मका ही अंश है—'ममैवांशो जीवलोके' (गीता १५।७), अपने अंशी ब्रह्ममें मिल जाता है। जिस प्रकार घटके फूट जानेपर घटाकाश, जो कि महाकाशका ही अंश है, महाकाशके साथ मिलकर एक हो जाता है, उसी प्रकार समझना चाहिये।

प्रश्न—यदि जीव असंख्य हैं, तो धर्मराज या ईश्वर कैसे न्याय करेंगे ?

उत्तर—जीव असंख्य होनेपर भी न्यायकारी ईश्वरके लिये उनका न्याय करना असंभव नहीं है; क्योंकि ईश्वर सर्वसमर्थ हैं। वे असम्भवको भी सम्भव कर सकते हैं; फिर यह बात तो उनके लिये असम्भव भी क्या है ? सब जीवोंका न्याय वे स्वयं कर सकते हैं या धर्मराज आदिके द्वारा करवा भी सकते हैं।

प्रश्न—अनादित्व और सान्तत्व परस्परविरोधी धर्म हैं। इसलिये यदि मायाको अनादि एवं सान्त माना जाय, तो इन दो परस्परविरोधी धर्मोंका समानाधिकरण कैसे होगा ? क्योंकि जो वस्तु अनादि होगी, वह सान्त नहीं हो सकती।

उत्तर—जीवके साथ मायाका सम्बन्ध अनादि होनेपर भी अन्तवाला है; क्योंकि माया अविद्याका नाम है और वह अविद्या वस्तुतः कोई चीज नहीं है। वह तो भूल है अर्थात् बिना हुए ही प्रतीत होती है। यदि अविद्या वास्तवमें कोई चीज होती, तो यह कहना युक्तिसंगत होता कि वह अनादि होनेपर सान्त नहीं हो सकती; परंतु जब वह कोई चीज ही नहीं, तो उसका अनादित्व भी वैसा ही है। ऐसे अनादित्वके साथ सान्तत्वका कोई विरोध नहीं हो सकता।

प्रश्न—यदि जीव परमात्माका अंश होनेके नाते परमात्माका स्वरूप ही है, तो फिर जीव और परमात्मामें प्रापक-प्राप्य-भाव सम्बन्ध नहीं हो सकता; क्योंकि प्राप्य-प्रापक-भाव सम्बन्ध भिन्न वस्तुओंमें ही सम्भव है।

उत्तर—ठीक है, वास्तवमें जीव और परमात्मा अभिन्न होनेके कारण उनमें प्राप्य-प्रापक-भाव सम्बन्ध नहीं है। जो जीव अपनेको परमात्मासे पृथक् मानते हैं, उन्हींको समझानेके लिये परमात्माको प्राप्त करनेकी बात कही जाती है। यों तो जीव सदा परमात्माको प्राप्त ही है; किंतु प्राप्त हुआ भी वह अपनेको अप्राप्त मानता है, इस भूलको मिटानेके लिये ही शास्त्रमें परमात्माको प्राप्त करनेकी बात कही गयी है।

प्रश्न—अज्ञानका नाश होता है, यह कैसे जाना जाय; क्योंकि श्रुतिने प्रकृतिको 'अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णाम्' आदि कहकर अनादि बतलाया है।

उत्तर—श्रुतिमें जो प्रकृतिको 'अजामेकाम्' आदि नामोंसे

पुकारा है सो ठीक ही है। योगसूत्रमें भी कहा है—'कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्यसाधारणत्वात् ।' (२ । २२) अर्थात् अविद्यारूपी माया कृतार्थ (जीवन्मुक्त) के प्रति नष्ट हुई भी अन्य सबके प्रति साधारण होनेसे अनष्ट ही है।

गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने भी कहा है—'प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि ।' (१३ । १९)—'प्रकृति और पुरुष—इन दोनोंको ही तू अनादि जान ।' परंतु साथ ही भगवान्ने ज्ञानके द्वारा इसका नाश भी बतलाया है—

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः ।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ॥
(गीता ५ । १६)

'परंतु जिनका वह अज्ञान परमात्माके तत्त्वज्ञानद्वारा नष्ट कर दिया गया है, उनका वह ज्ञान सूर्यके सदृश उस सच्चिदानन्दघन परमात्माको प्रकाशित कर देता है।'

ज्ञान अथवा विद्या बुद्धिका कार्य है । माया अर्थात् अविद्याके शान्त हो जानेपर उस मायासे उत्पन्न हुई बुद्धि भी शान्त हो जाती है । ऐसी दशामें उसका कार्य ज्ञान बिना आधारके ठहर नहीं सकता । तब केवल एक चेतन विज्ञानानन्दघन परमात्मा ही रह जाता है । योगदर्शनमें भी कहा है—

तदभावात्संयोगाभावो हानं तद्दृशेः कैवल्यम् ।
(२ । २५)

अर्थात् उस अविद्याके अभावसे प्रकृति-पुरुषके संयोगका अभाव हो जाता है; उसीका नाम 'हान' है और वही द्रष्टाकी

कैवल्य-अवस्था है। जैसे दियासलाईसे उत्पन्न हुई अग्नि दियासलाईके काठको भस्म करके स्वयं भी शान्त हो जाती है, इसी प्रकार शुद्ध बुद्धिसे उत्पन्न हुआ ज्ञान सम्पूर्ण कार्यसहित मायाको शान्त करता हुआ स्वयं भी शान्त हो जाता है। तदनन्तर केवल एक शुद्ध चेतन ही बच जाता है। किमधिकं विज्ञेषु।



[७०]

आपका लक्ष्मी-पूजनका पत्र मिला। मैं आसामकी ओर गया हुआ था, इससे उत्तर देनेमें विलम्ब हुआ। आपने लिखा कि 'संसार तथा शरीरमें आसक्ति बहुत होनेके कारण मन भगवान्में नहीं लगता, निरन्तर भगवच्चरणारविन्दोंमें चित्त लगे ऐसा उपाय लिखना चाहिये।' सो ठीक है। भगवान्में अनन्य प्रेम होनेपर ही चित्त निरन्तर भगवान्में लग सकता है। इसके लिये श्रद्धाकी आवश्यकता है। भगवद्भक्तोंके द्वारा भगवान्के गुण-प्रभावकी कथा सुननेसे श्रद्धा बढ़ सकती है। इसके लिये सत्सङ्ग करनेका प्रयत्न करना चाहिये। भगवान्के नाम-जपके अभ्याससे और वैराग्यसे भी मन वशमें हो सकता है। गीतामें कहा है—

> असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
> अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥
>
> (६। ३५)

'हे महाबाहो! निःसन्देह मन चञ्चल और कठिनतासे वशमें होनेवाला है; परंतु हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! यह अभ्यास और वैराग्यसे वशमें होता है।'

योगदर्शनमें भी कहा है—

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः । (१ । १२)

'अभ्यास और वैराग्यसे चित्तवृत्तियोंका निरोध होता है।'

शरीर और संसारको क्षणभङ्गुर समझनेसे एवं संपूर्ण पदार्थोंमें दुःख और दोष-दृष्टि करनेसे वैराग्य होता है तथा भजन-ध्यानके लिये अभ्यास करनेसे अन्तःकरण शुद्ध होता है, तब स्वतः ही वैराग्य उत्पन्न हो जाता है।

आपने लिखा कि—

लोलुप भ्रमत गृहपशु ज्यों जहँ तहँ, सिर पद-त्रान बजै ।
तदपि अधम बिचरत तेहि मारग, कबहुँ न मूढ़ लजै ॥

सो ठीक है; किंतु वास्तवमें सिरपर चोट लगी समझते नहीं हैं, केवल कथनमात्र ही करते हैं। इसीसे कुपथका त्याग नहीं करते।

आपने—

'यह मन नेक न कह्यौ करै ।
सीख सिखाय रह्यौ अपनी-सी दुर्मति ते न टरै ।'

—उद्धृत किया सो ठीक है। अच्छी प्रकार समझनेसे दुर्मतिका त्याग होकर मन वशमें हो सकता है; किंतु विवेककी विशेष आवश्यकता है।

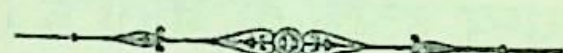
आपने लिखा कि—

'हौं हार्‍यौ करि जतन विविध विधि, अतिसै प्रबल अजै ।'

सो ठीक है, किंतु मनमें हार मानकर निराश नहीं होना चाहिये। कटिबद्ध होकर भजन-ध्यान करनेके लिये विशेष

चेष्टा करनी चाहिये । सच्चे दिलसे प्रभुकी शरण होनी चाहिये, फिर उसकी कृपासे सब कुछ सहजमें ही बन सकता है । मुझे कृपा, दया, प्रार्थना आदि शब्द नहीं लिखने चाहिये । परमात्माकी शरण होकर उनसे सच्चे हृदयसे विनययुक्त प्रार्थना करनी चाहिये । सच्चे हृदयकी पुकार उनके दरबारमें शीघ्र पहुँचती है ।

× × ×



[७१]

आपके पिताजीका देहान्त हो गया, यह शोकका विषय है । परंतु यह निरुपाय बात है । बाल-बच्चोंको तथा अपने मनको धैर्य देकर ईश्वरकी शरण लेनी चाहिये । वही दीन-दुखियोंका एकमात्र आश्रय है । यद्यपि निष्कामभावसे भगवान्‌की भक्ति करना सर्वोत्तम है; किंतु आपत्तिकालके निवारणके लिये प्रार्थना की गयी, सो कोई हानि नहीं। भविष्यमें विशेष ध्यान रखना चाहिये । मनुष्यको सङ्कटमें डालकर भगवान् जो परीक्षा करते हैं, यह बड़ा उपकार करते हैं । इससे पूर्वके पापोंका क्षय होता है और धीरता, वीरता, गम्भीरताकी वृद्धि होती है । × × × ।

श्रीशिव और श्रीविष्णुमें कोई भेद नहीं है । स्वयं विज्ञानानन्दघन परमात्मा ही श्रीशिव और श्रीविष्णुके रूपमें प्रकट होते हैं । अतएव किसीकी भी भक्ति की जाय, वह परमेश्वरकी ही भक्ति है । आपके यहाँ 'कल्याण' जाता होगा, आठवें वर्षके विशेषाङ्क 'शिवाङ्क' में मेरा लेख देख सकते हैं । उसमें इस विषयका स्पष्टतया उल्लेख किया गया है ।

श्रीशिवजी महाराज भगवान् श्रीराम, श्रीकृष्ण और श्रीविष्णुके पुजारी हैं; किंतु श्रीराम, श्रीकृष्ण एवं श्रीविष्णु भगवान् श्रीशिवके कम पुजारी नहीं हैं। अतएव पुजारीके रूपमें दोनों तुल्य ही हैं।

रुद्र ग्यारह अवश्य हैं। उनमें शङ्कर नामक रुद्र ही भगवान् शिवजी हैं, बाकी सब रुद्र उन्हींकी मूर्तियाँ यानी अंश हैं। अतएव श्रीशङ्करमें आपका श्रद्धा-विश्वास एवं प्रेम कम नहीं होना चाहिये। यदि आपका मन श्रीराम, श्रीकृष्ण या श्रीविष्णुकी ओर हो तो आप उनका ही जप-ध्यान कर सकते हैं, कोई हानिकी बात नहीं है; क्योंकि स्वयं परमेश्वर ही श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्रीविष्णु, श्रीशिव आदिके रूपमें प्रकट होते हैं। आप कभी शिव-शिव, कभी राधा-कृष्ण, राधा-कृष्ण और कभी राम-राम जपते हैं, इसमें भी कोई हानि नहीं है। परंतु एक ही नाम-रूपका जप-ध्यान और भी विशेष लाभदायक है। इसलिये एक ही नाम-रूपके जप-ध्यान करनेकी दृढ़ता रखनी चाहिये। 'श्रीराम-राम' जपना अच्छा लगता हो, तो श्रीरामचन्द्र-जीका ध्यान करना चाहिये। श्रीविष्णुभगवान्‌के ध्यानकी इच्छा हो, तो 'नारायण-नारायण' जपना उत्तम है। इसी प्रकार 'शिव' नामका जप करनेमें श्रीशिवका ध्यान और 'कृष्ण' नामका जप करनेमें श्रीकृष्णका ध्यान करना विशेष लाभप्रद है। नाम श्रीराम-श्रीकृष्णका जपा जाय और ध्यान चतुर्भुजमूर्ति श्रीविष्णुका किया जाय, तो भी कोई आपत्ति नहीं है; क्योंकि राम और कृष्ण श्रीविष्णुभगवान्‌के ही नाम हैं। महाभारत आदि ग्रन्थोंमें इसका जगह-जगह प्रमाण मिलता है। नाम 'नारायण'-'नारायण' जपा जाय और ध्यान श्रीराम या

श्रीकृष्णका किया जाय, तो भी कोई हानि नहीं है; क्योंकि श्रीनारायणदेव स्वयं ही तो श्रीराम और श्रीकृष्णके रूपमें प्रकट हुए हैं; किंतु जिसके नामका जप किया जाय, उसीके स्वरूपका ध्यान करना विशेष लाभप्रद है। अतएव आपकी जैसी रुचि हो, वैसा कर सकते हैं। इस विषयमें मेरी अनुमति चाहते हैं सो यह आपके प्रेमकी बात है। आपकी जिस नाम और रूपमें रुचि हो, उसी नामका जप और स्वरूपका ध्यान करनेकी ही मेरी अनुमति है। आपने मेरी अनुमतिके अनुसार चलनेको लिखा सो यह आपकी दया, विश्वास और प्रेमकी बात है।

आपने लिखा कि ऐसी युक्ति बतलाइये, जिससे मेरी ये शङ्काएँ दूर हो जायँ, घड़ी-घड़ीमें एक भगवान्‌को दूसरेसे अच्छा और लाभदायक मानना बंद हो जाय और भगवान्‌के एक ही स्वरूपमें विश्वास हो जाय सो ठीक है, इसका उत्तर इस पत्रमें ऊपर आ चुका है।

आपने पूछा कि 'भगवान् विष्णुने प्रत्यक्ष दर्शन दिये, ऐसी तो बहुत-सी कथाएँ मिलती हैं; क्या भगवान् शिवके विषयमें भी ऐसी कथाएँ मिलती हैं कि उन्होंने दर्शन दिये।' सो ठीक है। भगवान् शिवके विषयमें भी महाभारत, शिवपुराण आदिमें अश्वत्थामा, मार्कण्डेय, गिरिजा, नन्दीश्वर, बाणासुर-प्रभृति बहुत-से भक्तोंको प्रत्यक्ष दर्शन देनेकी कथाएँ मिलती हैं। श्रीशिवजी इतने उदार हैं कि रावण, भस्मासुर आदि राक्षसोंको भी उन्होंने प्रत्यक्ष दर्शन दिया था। × × ×।

मेरे पत्रको आप विशेष आदरसे रखते हैं और प्रेमसे पढ़ते हैं तथा पढ़नेपर आपको प्रेम एवं रोमाञ्च आदि होते हैं—

यह आपकी दया और विश्वास है। इसके लिये मैं आपका आभारी हूँ।

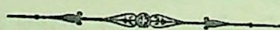
[७२]

तुम्हारा पत्र आया नहीं, मैं भी नहीं दे पाया। तुम्हारे पिताजीका शरीर शान्त होनेके बाद तुमलोगोंके ऋषिकेश जानेका भी अनुमान नहीं होता तथा तुम्हारे द्वारा और भी कोई अच्छे काम देखनेमें कम ही आते हैं। भजन-ध्यान और शास्त्रोंका अभ्यास भी कम हो गया एवं सत्सङ्गमें भी प्रेम कम मालूम होता है। शरीर और रुपयोंमें प्रेम अधिक मालूम होता है; किंतु इससे कुछ भी लाभ प्रतीत नहीं होता। सुनते हैं तुम्हारे शरीरके लिये भी पथ्य-परहेज नहीं है। स्वादके वश होकर कुपथ्य करके बीमारीका साधन करना उचित नहीं है। भगवान्‌के भजन-ध्यानमें प्रेम करना चाहिये। मुझे भूल भी जाओ तो कोई हानि नहीं है; किंतु भगवान्‌को नहीं भूलना चाहिये। भगवान्‌के सिवा तुम्हारा कोई नहीं है। शरीर भी अचानक एक दिन नाश हो जानेवाला है। जब शरीर भी साथ नहीं जायगा, तब दूसरेकी तो बात ही क्या है। फिर तुम किसलिये पागलके समान होकर उस प्रेमी निष्कामी भगवान्‌को भूल रहे हो? इस समय भी यदि तुम नहीं चेतोगे तो पीछे तुम्हें कौन चेतावेगा? ऐसा अवसर भी बार-बार मिलना बहुत कठिन है। समय बीता जा रहा है। जल्दी चेतना चाहिये। अबकी बार ऋषिकेशमें सत्सङ्ग बहुत ठीक हुआ। आगे ऋषिकेशमें तुम्हारा ध्यान लगा था, उसी प्रकार ध्यानका प्रयत्न करना चाहिये।

[७३]

आपने लिखा कि 'हमारे पिताजी हमारे साथ ठीक बर्ताव नहीं करते'--सो आपको मेरा कहना मानकर नित्य उनके चरणोंमें पड़ना चाहिये तथा उनके शरीरकी यथासाध्य सेवा करनी चाहिये। उनकी आज्ञाका पालन करना चाहिये, फिर उनका आपके साथ बहुत प्रेमका बर्ताव हो सकता है, ऐसा मुझे विश्वास है। आपके सेवाभावकी कमीके कारण उनके बर्तावमें दोष आ सकता है, और कोई भी कारण नहीं है। आपको पहले अपना बर्ताव सुधारना चाहिये, पीछे उनका आप ही सुधार हो सकता है तथा घरवालोंकी ओरसे सुख चाहते हैं तो उनके साथ प्रेमका बर्ताव और उनकी सेवा करनी चाहिये।

एक बात और भी आपको कही थी, वह याद होगी। उसे काममें लाना चाहिये। ब्रह्मचर्यका व्रत दृढ़ रखना चाहिये। दूसरी स्त्रियोंको माताके समान समझना चाहिये। अपने भाईसे बहुत प्रेम रखना चाहिये। उसका उपकार हो, ऐसी चेष्टा रखनी चाहिये। आप उसका उपकार करेंगे, तब वह आपका बिगाड़ कभी नहीं कर सकता।



[७४]

साधन तेज होनेमें भगवान्‌की दयाको हेतु समझकर अभ्यास करना चाहिये। भोगोंसे वैराग्य करना चाहिये। विदेशी कपड़ा पहनना तुमने छोड़ दिया होगा। भजन-ध्यान

तेज हो, इसके लिये विशेषरूपसे प्रयत्न करना चाहिये। समय
बीता जा रहा है। एक पल भी वृथा खोना उचित नहीं है।
ऐसा अवसर मिलना बहुत कठिन है। समयको अमूल्य
समझकर दिनों-दिन उसे ऊँचे काममें बिताना चाहिये।



[७५]

वास्तवमें मनुष्यको गिरानेवाला तो अपना मन ही है, अतः
उसको वशमें करके भगवान्‌में लगानेकी चेष्टा करनी चाहिये;
फिर गिरानेवाला कोई नहीं रह जायगा। संसारकी वस्तुएँ
अच्छी न लगनेमें कोई हानि नहीं, बल्कि लाभ है। भगवान्‌में
प्रेम बढ़ाना चाहिये। 'मैं' और 'मेरा' शब्द बोलनेमें कोई हानि
नहीं है, वास्तवमें संसारसे 'मेरापन' और शरीरसे 'मैं' भाव
निकालनेकी आवश्यकता है, अतः इसीके लिये चेष्टा होनी चाहिये।

आप मेरा सङ्ग चाहते हैं, यह आपके प्रेमकी बात है।
धन कमानेकी व्यवस्था लगनी-न-लगनी प्रारब्धाधीन है, चेष्टा
रखनी चाहिये। फिर जो कुछ हो, उसीमें ईश्वरकी दया समझ-
कर निरन्तर प्रसन्न रहना चाहिये। चिन्तासे अवश्य स्वास्थ्य
बिगड़ता है, अतः चिन्ता नहीं करनी चाहिये। सोते समय
भगवान्‌को याद करते-करते सोनेका अभ्यास डालना चाहिये।
ऐसा करनेसे बुरे स्वप्न आने बंद हो सकते हैं। जिह्वासे जप
करना भी बहुत अच्छा है, पर श्वासके साथ जपका अभ्यास
डालनेसे और भी सुगमता मिल सकती है। जप करते समय
मनसे भगवान्‌को याद रखनेका अभ्यास अवश्य करना चाहिये।
इसकी बहुत आवश्यकता है।

भोजनमें जो संयम किया गया हो, उसको प्रकट किये बिना नियमोंका पालन करनेमें कठिनाई मालूम पड़ती हो तो ऐसे अवसरपर बहुत नम्रताके साथ नियम बतला देनेमें कोई हानि नहीं है। दूसरोंका अन्न न खानेकी इच्छा रखना अच्छा है, पर कहीं उनको दुःख होता हो तो उनके संतोषके लिये स्वीकार कर लेनेमें आपत्ति भी नहीं है।

दूसरोंके सामने भजन-साधन आदि प्रकट न करना ही उसे गुप्त रखना है—इसमें न समझनेकी क्या बात है।



[७६]

प्रेमपूर्वक हरिस्मरण। श्री·····के पत्रमें आपका समाचार मिला। आपके पिताजीका देहान्त अचानक हो गया सो लौकिक हिसाबसे चिन्ताकी बात है। पर चिन्ता करनेसे कोई लाभ नहीं। शरीर नाशवान् है, इसका नाश एक दिन अवश्य होता है। वियोग होना निश्चित है। अतः बुद्धिमान् मनुष्य इस विषय-में चिन्ता नहीं किया करते। आप स्वयं समझदार हैं। आपको भी धैर्य रखना चाहिये। साथ ही इस प्रकारकी मृत्युसे यह शिक्षा लेनी चाहिये कि शरीरका कुछ भरोसा नहीं है, अतः मनुष्य-जीवनको जितना शीघ्र हो सके, सफल बना लेना चाहिये। संसारके भोगोंमें तो लेशमात्र भी शान्ति नहीं है। शान्ति केवल ईश्वर-कृपासे ही मिल सकती है। अतः भजन, ध्यान, सेवा और सत्सङ्गके द्वारा भगवान्‌की कृपा प्राप्त करनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

नियमोंके लिये पूछा सो सत्यका विशेष अभ्यास डालना चाहिये। हँसीमें भी कभी झूठ न बोला जाय, किसीके साथ व्यवहारमें कपट न किया जाय, किसीको कष्ट न दिया जाय, दूसरेके हकपर अपना अधिकार जमानेकी चेष्टा या इच्छा कभी न हो, पर-स्त्रीको माता और बहिनके सदृश समझकर मनमें कभी भी बुरा संकल्प न आने दिया जाय, ब्रह्मचर्यका पालन हो, धन आदि पदार्थोंमें ममता उठानेका अभ्यास किया जाय तथा नियमपूर्वक भगवान्‌के नामका जप, उनका स्मरण और सन्ध्या-वन्दन आदि किये जायँ—ये सब नियम सब प्रकारसे हितकर हैं। भगवान्‌को निरन्तर याद रखना—मनुष्य-शरीरका प्रधान कर्तव्य है। अतः इसकी ओर विशेष ध्यान रखना चाहिये। प्रतिदिन नियमपूर्वक जप, ध्यान करनेका निश्चित समय तो रखना ही चाहिये। इसके सिवा व्यापार आदि दूसरे सांसारिक कार्य भी निरन्तर भगवान्‌को याद रखते हुए ही करनेका अभ्यास डालना चाहिये।

पिताका देहान्त होनेके बाद पुत्रका कर्तव्य पूछा सो शास्त्राज्ञा तथा संसारके व्यवहारके अनुसार श्राद्ध आदि कृत्य समयपर किये ही जाते हैं, उनके सिवा भगवान्‌से उनको शान्ति प्रदान करनेके लिये प्रार्थना करनी चाहिये। पुत्रकी बुराइयोंसे पिताकी भी निन्दा होती है—इस बातको ध्यानमें रखकर अपनेको सदाचारी बनाये रखनेकी ओर विशेष ध्यान रखना चाहिये। मुख्य-मुख्य नियम ऊपर लिखे ही गये हैं, विस्तार देखना हो तो 'तत्त्व-चिन्तामणि' के लेखोंमें देख सकते हैं।

[७७]

आपका पत्र यथासमय मिल गया था। विलम्बके लिये क्षमा करें। आपकी शङ्काओंका उत्तर नीचे क्रमशः लिखा जा रहा है—

आपने लिखा कि 'जो बच्चा खिलौनेको फेंककर मा-माकी चिल्लाहट लगा देता है, चाहे वह कैसा ही हो, माता उसे गोदमें उठा लेती है; इसी प्रकार परमात्माके लिये कोई न जी सकनेकी अवस्थामें आ जाय तो भगवान् उसे अवश्य ही मिलेंगे।' सो ठीक है। परमात्माको पुकारनेकी आवश्यकता है; परंतु इससे यह तात्पर्य नहीं निकालना चाहिये कि मानव-जीवन प्राप्त करके भगवान्के दर्शन विना प्राणधारण करना भगवत्प्रेम नहीं है। वह भगवत्प्रेम अवश्य है; किंतु अनन्य प्रेम नहीं है। और अनन्य प्रेमका यह भी आशय नहीं निकालना चाहिये कि भगवान्के लिये हठपूर्वक प्राणोंका त्याग कर दिया जाय। यदि प्रेमके कारण ऐसी परिस्थिति हो जाय कि वह भगवान्के विना जीवित ही न रह सके तो यह अनन्य प्रेम है, क्योंकि इस प्रेममें न तो बनावट है और न हठ ही। आपने लिखा कि 'जो मोहि राम लागते मीठे। तौ नवरस षटरस-रस अनरस ह्वै जाते सब सीठे।' सो ठीक है, जिसकी ऐसी अवस्था हो जाती है, वास्तवमें वही अनन्य प्रेमी है।

आपने पूछा कि 'संसारमें देखा जाता है कि स्वार्थ-साधक आत्मीय स्वजनोंके मरनेसे हमको इतना अधिक दुःख होता है कि खाना-पीना भी छूट जाता है और कितने ही

मर भी जाते हैं तो फिर जो हमारे सर्वस्व हैं, उन भगवान्‌के वियोगमें हम कैसे प्रसन्न रहें या जीवित रहें ?' सो ज्ञात हुआ । भगवत्प्रेमके कारण यदि खाना-पीना आदि भूल जाय तो कोई बात नहीं, परंतु जान-बूझकर ऐसा करके प्राण-त्याग करना उचित नहीं है । परमात्माके नामका जप, ध्यान और सत्सङ्ग करके अथवा प्रभुकी अलौकिक दयाको याद करके प्रसन्न रहना अनुचित नहीं, परंतु उनके वियोगमें सांसारिक भोगोंमें लिप्त होकर प्रसन्न रहना कदापि उचित नहीं है ।

'मानव-देह भगवद्भजनके लिये ही मिलता है, अतः यदि भजन करनेमें असमर्थ हो तो उस धरोहरको प्राणत्यागद्वारा भगवान्‌को ही लौटा देना अच्छा है'-ऐसा लिखा सो यह ठीक नहीं । मनुष्य-शरीर भगवान्‌के भजनके लिये ही मिला है, यह बात बहुत ठीक है। पर यदि भजन न बने तो हठपूर्वक प्राणत्याग करना उचित नहीं, बल्कि उनकी वस्तुको उन्हींके काम—भजन-ध्यान आदिमें लगानेका विशेष प्रयत्न करना चाहिये । हठपूर्वक शरीरका त्याग कर देना उनके अर्पण करना नहीं है ।

आपने लिखा कि 'भगवान्‌के भोग लगाकर उनका जूँठन ही खाकर जीना उचित है और भगवान् भक्तद्वारा अर्पित भोजनको स्वयं प्रकट होकर खाते हैं—इस सत्यपर विश्वास होते हुए भी उन्हें साक्षात् न खिलाकर प्रतिमाके भोग लगाकर सन्तोष कर लेना प्रेमहीनता है । भोजनके विना वह मर नहीं जायगा; क्योंकि मृत्युसे बचानेकी शक्ति भोजनमें नहीं, भगवान्‌में है ।' सो मालूम किया । साक्षात्

भगवान्‌के भोग लगाकर भोजन करना अत्युत्तम है; किंतु जबतक हम उनके साक्षात् दर्शनके पात्र न बन सकें, तबतक उनकी मूर्तिके ही भोग लगाकर भोजन करनेमें सन्तोष करना भी बुरी बात नहीं है। हमलोग भगवान्‌के साक्षात् दर्शन करके भोग नहीं लगा सकते, इसमें हमारे प्रेम और श्रद्धाकी कमी अवश्य है, इसके लिये हमें पश्चात्ताप अवश्य करना चाहिये और इस त्रुटिकी पूर्तिके लिये चेष्टा भी अवश्य करनी चाहिये, पर हठसे मर जाना उचित नहीं। शरीर प्रारब्धाधीन है, भोजनके अधीन नहीं है। शरीर परमात्माके अधीन है यह ठीक है किंतु हम शरीर-रक्षाके लिये परमात्माका सहारा क्यों लें?

आपने पूछा—'जो बड़भागी भगवान्‌की सदा ही प्रसन्नता प्राप्त किये रहते हैं, उनके लिये तो ऐसा हठ करना उचित नहीं, परंतु जो लोग भगवदाज्ञानुसार चलनेमें काम-क्रोधादिके कारण अयोग्य हों, उन्हें योग्यताप्राप्तिके लिये हठसे भी भगवत्प्राप्ति करना कैसे अनुचित है?' सो ठीक है, किंतु काम-क्रोधादिके वशमें होनेके कारण भगवदाज्ञाका पालन नहीं हो सकता तो हठपूर्वक काम-क्रोध आदिको नष्ट करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। जिसका दोष हो, उसे ही दण्ड देना चाहिये, शरीर और प्राणको नहीं।

सेवाकुञ्जमें रात्रिमें हठपूर्वक रहनेसे एक ब्राह्मणको भगवान्‌के दर्शन होनेकी बात लिखी सो इस विषयमें आपको विश्वास हो तो आप भी रह सकते हैं। लोग वहाँ रहनेसे जो मरनेका भय बतलाते हैं सो मुझे तो इसपर विश्वास नहीं होता। और यदि कोई मर भी जाता होगा तो अपने भयसे मर

जाता होगा—मेरा तो ऐसा विश्वास है। वहाँ—सेवाकुञ्जमें रहनेसे भगवान् मिलते हैं या नहीं—यह मुझे मालूम नहीं।

आपने 'आत्मसमर्पण विना भक्ति पूरी नहीं होती तो फिर इसे ही पहले करके भगवत्प्राप्ति क्यों न कर ली जाय ?'—लिखा सो ठीक है। आत्मसमर्पण करनेसे भगवत्प्राप्ति अवश्य होती है; परंतु भगवान्‌के लिये हठसे मर जाना आत्मसमर्पण नहीं है। अपना तन, मन, धन—सर्वस्व ईश्वरके काममें लगा देना और उनके काममें लगनेसे ही प्रसन्न रहना आत्मसमर्पण है, प्राणोंका हठपूर्वक त्याग करना नहीं।

'महात्मा कबीरने प्राणोंका उत्सर्ग ही प्रेमकी कसौटी माना' लिखा सो ठीक है, उनका इससे क्या आशय था सो तो वे ही जानें, पर हमलोगोंको तो इससे यह सार ग्रहण करना चाहिये कि भगवत्प्राप्तिके लिये प्राणपर्यन्त चेष्टा करनेमें नहीं चूकना चाहिये, न कि वास्तवमें उसे निमित्त बनाकर हठपूर्वक प्राणोंको दे डालना चाहिये।

'नाम-जपके फलसे वञ्चित रखनेवाला कौन-सा महादोष है—' पूछा सो नाम-जपके फलसे वञ्चित रखनेवाला तो कोई दोष नहीं है। फल तो अवश्य होता ही है, चाहे वह इस लोकमें प्राप्त हो या परलोकमें; नामजपके फलका कभी नाश हो ही नहीं सकता। हाँ, यह बात अवश्य है कि श्रद्धा और प्रेमकी जितनी कमी होती है, उतना फल भी कम मिलता है। अधिक हो तो अधिक मिलता है। वाल्मीकिजी उलटा नाम-जप करके तर गये, गणिका वेश्या नाम लेकर तर गयी सो उनका भगवान्‌में प्रेम और विश्वास था। आपने जो यह लिखा कि

मुझे तो श्रद्धाकी कमी ही प्रधान बाधा मालूम होती है सो ठीक है; जितनी श्रद्धा होती है, उतना ही प्रेम भी स्वाभाविक ही हो जाता है। पूर्वमें कोई चाहे कैसा भी क्यों न हो, श्रद्धा-प्रेमपूर्वक जप करनेसे सम्पूर्ण बाधाएँ मिटकर वह धर्मात्मा हो सकता है। पाप नामजपके फलमें बाधक नहीं हैं, परंतु जपकी वृद्धिमें अवश्य कुछ बाधक हैं; परंतु प्रेमपूर्वक जप करनेसे यह बाधा मिट सकती है, जैसे कि वाल्मीकिजी और गणिकाकी जपमें श्रद्धा-प्रेम होनेसे समस्त बाधाएँ मिट गयीं। कुमारिल भट्टमें भी श्रद्धा और प्रेम दोनों ही थे; क्योंकि जहाँ श्रद्धा होती है, वहाँ प्रेम भी होता ही है. यह नियम है; किंतु जहाँ प्रेम होता है, वहाँ श्रद्धा होनेका कोई नियम नहीं है।

आपने लिखा कि 'ईश्वरके सभी विधानोंमें प्रसन्न रहना चाहिये. इसका क्या यह भी आशय है कि उनके वियोगको भी उनका विधान समझकर प्रसन्न रहा जाय ? और क्या सदैव स्मरणको ही इतिश्री मानकर सन्तोष करना चाहिये ?' सो ठीक है। ईश्वरके सभी विधानोंमें प्रसन्नता माननी ही चाहिये। यहाँ विधानका अभिप्राय है—पूर्वकृत कर्मोंका फल-प्रदान। इसलिये भगवद्-वियोग कोई विधान नहीं है; क्योंकि यह किसी कर्मका फल नहीं है। भगवान्में श्रद्धा-प्रेमका अभाव होनेके कारण उनका वियोग सहन करना पड़ता है और श्रद्धा-प्रेमका अभाव किसी कर्मका फल नहीं है। इसलिये कर्म-फल-भोगमें हमें प्रसन्न रहना चाहिये, न कि भगवान्के वियोगमें। तथा नवीन कर्म तो प्रयत्नसाध्य है, अतः नवीन कर्ममें तो हमें ईश्वरके बल-पर पुरुषार्थ अवश्य ही करना चाहिये। यदि निरन्तर भगवत्-स्मरण होता हो तो उसमें हमें अवश्यमेव परम सन्तोष करना

चाहिये, क्योंकि बिना प्रेमके तो निरन्तर स्मरण होता नहीं और संसारमें भगवत्प्रेमसे बढ़कर और है ही क्या! ईश्वरकी प्राप्ति भी तो प्रेमके ही अधीन है।

तज्जपस्तदर्थभावनम्। (योगसूत्र १। २८)

इस सूत्रका अर्थ है—'उसके नामका जप और उसके अर्थकी भावना करना।' ईश्वरका अर्थ तो ईश्वरका स्वरूप ही है। तत्त्वसहित ईश्वरके स्वरूपको समझकर उसका चिन्तन करना ही उसके अर्थकी भावना है। ॐकारका अर्थ है—उस परमात्माका स्वरूप और भावना है—उस स्वरूपका चिन्तन।

'गीतामें भक्तिको स्वतन्त्र निष्ठा क्यों नहीं कहा गया?' पूछा सो गीतामें भक्तिप्रधान निष्काम कर्मको कर्मयोग कहा गया है और यह सर्वथा स्वतन्त्र है, इसलिये भक्तिको अलग निष्ठारूपसे नहीं बतलाया है: अतः आपको कर्मयोगमें ही भक्तियोग समझ लेना चाहिये।

आपने पूछा कि 'श्रद्धापूर्ण परंतु शास्त्रविधिसे विरुद्ध या शास्त्रविधिके ज्ञानके अभावसे किये गये सकाम और निष्काम कर्मका क्या फल है?' सो शास्त्रविरुद्ध कर्म करनेवालेकी श्रद्धा तो समझी ही नहीं जा सकती। यदि कोई शास्त्रविरुद्ध मनमाना बुरा आचरण करता है तो उसे दण्ड मिलता है और यदि शास्त्रविरुद्ध मनमाना सेवा-पूजा आदि उत्तम कर्म करता है, उसका फल कुछ भी नहीं होता (गीता १६। २३) तथा जो बिना श्रद्धाके शास्त्रविधिके अनुसार भी उत्तम कर्म करता है तो उसका भी कोई फल नहीं होता; क्योंकि वह असत् है (गीता १७। २८)। एवं

शास्त्रविधि और श्रद्धा--दोनोंसे रहित जो कर्म करता है, वह तामसी है और उसका फल नरक है (गीता १७ । १३)। किंतु जो शास्त्रविधिको तो नहीं जानते पर श्रद्धापूर्वक सेवा-पूजा आदि शुभकर्म करते हैं, उनमेंसे सकाम भावसे किये जानेवाले कर्म राजसी हैं और उनका फल इस लोक और पर-लोकमें सुख मिलता है (गीता १७ । १२) तथा निष्कामभावसे किये जानेवाले कर्म सात्त्विक कहलाते हैं और उनका फल अन्तःकरणकी पवित्रता और अपने आत्माका कल्याण होता है (गीता १७ । ११)।

आपने लिखा कि 'संन्याससे भी अधिक योग्यतावाला कर्मयोग सर्वसुलभ क्यों नहीं हुआ ? काल-क्रमसे उसका प्रचार बंद क्यों हो गया ? इससे प्रकट होता है कि यह अवश्य ही कठोर मार्ग है।' सो जाना। यद्यपि संन्यासमार्ग तो कठिन है ही, तथापि कर्मप्रधान कर्मयोगमें भक्तिकी गौणता रहनेसे वह कर्मयोग भी साधनमें कठिन पड़ जाता है। इसलिये उसकी प्रणाली प्रायः बंद-सी हो गयी। इस घोर कलिकालमें तो केवल भक्ति ही सुलभ साधन है और कर्म तो उसके अन्तर्गत आ ही जाते हैं। प्राचीन और अर्वाचीन कालमें जितने भी भक्त हुए हैं, वे प्रायः भक्तिसे ही परमगतिको प्राप्त हुए हैं। उनमें कर्मकी गौणता थी, अतः वे कर्मयोगी न माने जाकर भक्त ही माने गये; किंतु उनमें कर्मकी कुछ कमी होनेपर भी उन्हें कर्मयोगी ही मानना चाहिये; क्योंकि ईश्वरभक्ति भी तो एक उत्तम कर्म ही है।

आपने पूछा कि 'गीतामें बतलाये हुए यज्ञचक्रको न चलानेसे केवल गृहस्थको ही पाप लगता है या संन्यासीको

भी ?' सो ज्ञात हुआ। गीताके तीसरे अध्यायके १२, १३ और १६ वें श्लोकमें बतलाये हुए दोष अन्न पकाकर देवताको न अर्पण करनेवाले (यज्ञ न करनेवाले) गृहस्थी आदिको ही लगते हैं, गृहत्यागी संन्यासियोंको नहीं। पर झूठे संन्यासियोंको तो संन्यास-आश्रमके धर्मोंका पालन न करनेसे गृहस्थोंकी अपेक्षा और भी अधिक दोष लगता है।

आपने लिखा कि 'रामगीतामें बतलाये हुए वाक्यसे प्रतीत होता है कि भगवत्प्राप्तिका अधिकार संन्यासीको ही है।' सो रामगीतामें मुझे तो आपका लिखा हुआ वाक्य कहीं नहीं मिला। भगवत्प्राप्तिका अधिकार तो सभी वर्ण और सभी आश्रमवालोंको है, केवल संन्यासीको ही है, यह बात नहीं (देखिये गीता ९। ३२)।

आपने पूछा कि 'गीतामें वर्णित 'न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि' (१८। ५८), 'ये त्वेतदभ्यसूयन्तः' (३। ३२) आदि वचन किस मार्गविशेषके विषयमें कहे गये हैं ? जिन्होंने गृहस्थाश्रमको छोटी उम्रमें ही त्याग दिया, ऐसे बुद्ध, चैतन्य और रामतीर्थ आदिको भी कर्मत्यागका दोष लगना चाहिये था।' सो जाना। गीताके तीसरे अध्यायके तीसवें और अठारहवें अध्यायके सत्तावनवें श्लोकोंको देखनेसे यही ज्ञात होता है कि उपर्युक्त 'न श्रोष्यसि' इत्यादि वाक्य भगवान्‌ने गृहस्थमें रहकर कर्मयोग न करनेवालेको ही लक्ष्य करके कहे हैं, सच्चे संन्यासियोंके लिये नहीं। 'विनङ्क्ष्यसि' का अर्थ पतन होना लेना चाहिये। बुद्ध, चैतन्य और रामतीर्थ आदिको यह दोष लागू नहीं हो सकता; क्योंकि शास्त्रमें यह विशेष वचन कहा है

'यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेत्' अर्थात् जब वैराग्य हो, तभी गृहस्थाश्रमका त्याग कर सकता है। अतः उन्होंने धर्मका त्याग नहीं किया; क्योंकि यह भी धर्म ही है।

आपने लिखा कि 'व्रजगोपियोंने और विभीषण, सुग्रीवने भगवान् और शास्त्रकी आज्ञाका उल्लङ्घन किया, अतः उन्हें पाप होना चाहिये था; वह क्यों नहीं हुआ ? भगवान् इनपर प्रसन्न थे, क्या इसीलिये नहीं हुआ ?' सो व्रजगोपियोंको पतिकी आज्ञा न माननेका पाप तो अवश्य लगा होगा, परंतु भगवद्भक्तिके प्रतापसे उस दोषका नाश हो गया। विभीषणने गोहत्या की थी या नहीं—मुझे पता नहीं। यदि की भी हो तो उसका पाप तो अवश्य ही लगा होगा; परंतु भगवद्भजनसे उसका छुटकारा हो सकता है—यह शास्त्रानुकूल ही है। राक्षस, बंदर और शूद्रोंके लिये नियोग करना दोष नहीं है। अतः विभीषण और सुग्रीवने यदि अपनी भाभीके साथ नियोग किया हो तो कोई दोषकी बात नहीं है, किंतु बालिके लिये इसलिये दोष बतलाया गया कि उसने बलपूर्वक अपने छोटे भाईकी स्त्रीके साथ सहवास किया था।

ऊपर आपके पत्रमें पूछे हुए प्रश्नोंके उत्तर लिखे गये हैं। अब, आपके पोस्टकार्डमें की हुई शङ्काओंका उत्तर लिखा जाता है—

आपने लिखा कि 'जिसमें किसी लौकिक सुखकी इच्छाके साथ सांसारिक दुःखोंसे त्राण पाने, ईश्वरतत्त्वको जानने और ईश्वरभक्तिको प्राप्त करनेकी इच्छा हो, उसे अर्थार्थी आदि भक्तोंमेंसे किस श्रेणीका भक्त समझना चाहिये ?' सो ठीक है। गीताके सातवें अध्यायके सोलहवें श्लोकमें वर्णित भक्त-श्रेणीमें

अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी (निष्कामी) को इस प्रकार क्रमशः उत्तरोत्तर श्रेष्ठ समझना चाहिये। जिस भक्तमें सांसारिक सुख-प्राप्तिके साथ-साथ सांसारिक दुःखोंसे छूटने, ईश्वरतत्त्वको जानने और ईश्वर-भक्तिकी प्राप्ति करने आदिकी इच्छा हो, उसे अर्थार्थी भक्त ही समझना चाहिये जैसे ध्रुव आदि। और जिसमें संकटसे छूटने, ईश्वरतत्त्व जानने तथा ईश्वर-प्रेम प्राप्त करनेकी इच्छा हो, उसे आर्तभक्त समझना चाहिये, जैसे द्रौपदी आदि। सारांश यह है कि भक्ति करनेवाले भक्तमें जो नीची-से-नीची भावना रहती है, श्रेणी-निर्णयके लिये वही भावना ली जाती है।

× × × ×

आपने लिखा कि 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' आदिसे मनुष्यको कर्म करनेमें पूर्ण स्वतन्त्रता दी गयी है; किंतु अधिष्ठान, कर्ता इत्यादिके वर्णनसे यह सिद्धान्त पुष्ट नहीं होता सो इसका क्या रहस्य है?' सो जाना। 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' इत्यादि तो निष्काम कर्मके सिद्धान्तसे बतलाया गया है और अधिष्ठान-कर्ता आदिका वर्णन सांख्यसिद्धान्तकी दृष्टिसे किया गया है और उसके बतलानेका वहाँ तात्पर्य भी दूसरा ही है। अभिप्राय यह है कि दूसरे अध्यायके ४७ वें श्लोकमें तो कर्ममें फल और आसक्ति आदिका निषेध किया है और अठारहवें अध्यायके १४ से १७ वें श्लोकतक कर्मोंमें कर्तापन माननेका निषेध है। भगवान्‌ने जहाँ-जहाँ कर्मयोगका सिद्धान्त बतलाया है, वहाँ-वहाँ कर्ममें फल और आसक्तिका त्याग करनेको कहा है और ज्ञानयोगका सिद्धान्त जहाँ बतलाया है, वहाँ कर्तापनका अभाव करनेके लिये कहा है।

आपने 'सन्देहनाशके लिये कोई बात दुबारा पूछूँ तो उसे तर्क-वितण्डा न समझें' लिखा सो ठीक है। आपको इस प्रकार बार-बार पूछनेमें तनिक भी संकोच नहीं होना चाहिये।

[७८]

पत्र मिला। मैं फिर चक्रधरपुर चला गया था, इसलिये उत्तर देनेमें विलम्ब हुआ। आपने मिलनेकी तथा मिलनेपर सब बातें पूछनेकी लिखी सो आपके प्रेमकी बात है। चित्तको शान्ति मिलनेका सरलसाध्य उपाय है—अर्थसहित परमेश्वरके नामका जप और अच्छे पुरुषोंका सङ्ग। इन दोनोंको काममें लाना चाहिये।

संसारसे विरक्ति शान्तिका कारण है। विरक्तिका यह अर्थ नहीं कि गृहस्थ छोड़कर संन्यास ले लेना या वनमें चले जाना। विरक्तिका यह अभिप्राय है कि संसारमें रहकर ही सांसारिक विषय-भोगोंमें आसक्त न होना। संसारमें रहनेसे सांसारिक लोग तो अवश्य राग-द्वेषके झमेलेमें घसीटेंगे; परंतु समझदार मनुष्यको तो राग-द्वेषके वशमें नहीं होना चाहिये; क्योंकि राग-द्वेषके त्यागमें इसकी स्वतन्त्रता है। अतः कटिबद्ध होकर प्रयत्न करना चाहिये, इससे सफलता भी प्राप्त होना सम्भव है।

सबके साथ सरलतापूर्वक शिष्टताका व्यवहार अवश्यमेव ही करना चाहिये, लोग चाहे उसे निर्बल ही समझें, इसमें कोई हानि नहीं। यदि कोई हमें लूटना चाहें तो उन लुटेरोंसे बचकर रहना चाहिये।

नीच आचरण करनेवाले व्यक्तिसे उपेक्षा करनेमें भी कोई दोष नहीं है; किंतु उससे द्वेष या घृणा नहीं करनी चाहिये। कठोर व्यवहार करनेमें उसका हित हो तो कठोर व्यवहार करना भी नीति है।

संसारके कार्यको झंझट समझकर उससे अलग होनेकी आवश्यकता नहीं है। संसारमें रहते हुए सांसारिक कामको करते रहना चाहिये; किंतु राग-द्वेषमें फँसकर उसमें लिप्त नहीं होना चाहिये। भगवान् कहते हैं—

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति॥
इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ॥

(गीता ३। ३३-३४)

'सभी प्राणी प्रकृतिको प्राप्त होते हैं अर्थात् अपने स्वभावके परवश हुए कर्म करते हैं। ज्ञानवान् भी अपनी प्रकृतिके अनुसार चेष्टा करता है। फिर इसमें किसीका हठ क्या करेगा? इन्द्रिय-इन्द्रियके अर्थमें अर्थात् प्रत्येक इन्द्रियके विषयमें राग और द्वेष छिपे हुए स्थित हैं। मनुष्यको उन दोनोंके वशमें नहीं होना चाहिये; क्योंकि वे दोनों ही इसके कल्याणमार्गमें विघ्न करनेवाले महान् शत्रु हैं।'

परमात्माको याद रखते हुए फल और आसक्तिको त्यागकर सबके हितके लिये सबके साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार करना चाहिये। ऐसा करनेसे अन्तःकरण पवित्र होता है और शान्ति

मिलती है । इस प्रकारके अभ्यासकी वृद्धि होनेसे चित्तकी वृत्तियाँ शान्त होकर परमानन्दस्वरूप परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है । दृढ़ अभ्यास और तीव्र वैराग्य रहनेसे बुरे साथियोंके सङ्गका भी बुरा प्रभाव नहीं पड़ सकता ।

इस घोर कलिकालमें भजन, सत्सङ्ग और भगवान्‌की दयाके अनुभवके समान कोई सरल उपाय नहीं है । अतएव अच्छे पुरुषोंका सङ्ग करनेकी चेष्टा करनी चाहिये । उनका सङ्ग न मिलनेपर सत्-शास्त्रोंका अभ्यास करनेकी चेष्टा करनी चाहिये और ईश्वरके नामको निरन्तर याद रखते हुए स्वार्थको त्यागकर सब भूतोंके हितकी चेष्टा करनी चाहिये ।



[७६]

पत्र आपका मिला । समाचार ज्ञात हुए । बम्बईमें मिलनेपर आपकी मेरे पास रहनेकी इच्छा लिखी सो आपकी दयाकी बात है । भजन न होनेसे चित्तमें अशान्ति रहती है । सो चित्त लगाकर भजन करना चाहिये । आपको भजन करनेके लिये प्रातःकाल और सायङ्काल समय देनेके लिये ·······को लिख दिया जाता है ।

आपने लिखा कि यहाँ सत्सङ्ग नहीं है सो काशीजी तीर्थस्थान है, चेष्टा करनेसे वहाँ सत्सङ्ग मिल सकता है ।········· भाईके कारण आपको सत्सङ्गका लाभ बहुत होता था सो ठीक है । शरीर ठीक न रहनेके कारण आप उनसे अधिक लाभ न उठा सके सो शरीर ठीक न रहना दैवाधीन बात है ।

एकान्तमें बैठकर भजन करना या निरन्तर काम करते हुए भजन करना एक ही बात है। गीता अध्याय ८ श्लोक ७* की तरह काम करते हुए भी भजन करना चाहिये तथा नित्य-प्रति एकान्तमें भी भजनके लिये समय अवश्य निकालना चाहिये। गोरखपुरमें रहना हो तो सब लोग जैसे प्रेसके काममें समय देते हैं, वैसे ही आपको भी देना चाहिये, नहीं तो दूसरे आदमियोंपर बुरा असर पड़ेगा। लोग समझेंगे कि भगवान्‌को याद रखते हुए भगवान्‌का काम करनेकी अपेक्षा भी काम छोड़कर एकान्तमें भजन करना उत्तम है। यद्यपि एकान्तमें बैठकर भजन करना उत्तम है, परंतु उसमें भी आलस्य और स्फुरणाका डर तो बना ही रहता है। जब हम भजन करते हुए भगवान्‌का काम करते हैं, तब वह काम भजनसे कम कैसे हो सकता है!

---

[८०]

आपका कृपापत्र मिला। स्वास्थ्य ठीक न रहने तथा कार्यकी अधिकताके कारण उत्तर समयपर नहीं दिया जा सका, इसके लिये क्षमा चाहता हूँ।

---

* तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्॥

'इसलिये हे अर्जुन! तू सब समयमें निरन्तर मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर। इस प्रकार मुझमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धिसे युक्त होकर तू निःसन्देह मुझको ही प्राप्त होगा।'

आपको जो इस बातका पछतावा है कि आपने अपनी आयुके ५४ वर्ष यों ही व्यतीत कर दिये सो ठीक है, किंतु असली पछतावा वही है कि यह ज्ञान हो जानेके बाद अपनी आयुका शेष भाग अपने विचारे हुए ध्येयके अनुसार साधनमें ही व्यतीत किया जाय।

अब, भगवत्सम्बन्धी विषयमें कुछ लिखा जाता है। ईश्वर-साक्षात्कारके लिये सर्वोत्तम एवं सुगम उपाय ईश्वरकी अनन्य भक्ति यानी शरणागति है। इसके लिये सत्पुरुषोंका सङ्ग और सत्-शास्त्रोंका अध्ययन अत्यन्त लाभदायक और आवश्यक है। ईश्वरकी अनन्य भक्ति अथवा अनन्य शरणागतिका स्वरूप यदि विस्तारसे जानना हो तो आप गीताप्रेससे प्रकाशित 'तत्त्व-चिन्तामणि' देख सकते हैं और यदि आपका ऋषिकेश आना हो तो वहाँ प्रत्यक्षमें भी इस विषयमें पूछ सकते हैं। इस समय पत्रमें तो सूत्ररूपसे कुछ निवेदन किया जाता है।

भगवान्‌ने गीताके ११ वें अध्यायके ५४-५५ वें श्लोकोंमें अपनी प्राप्तिका उपाय इस प्रकार बतलाया है—

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥
मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव॥

'हे परंतप अर्जुन! अनन्य भक्तिके द्वारा इस प्रकार मैं प्रत्यक्ष देखनेके लिये, तत्त्वसे जाननेके लिये तथा प्रवेश करनेके लिये अर्थात् एकीभावसे प्राप्त होनेके लिये भी शक्य हूँ। हे अर्जुन! जो पुरुष केवल मेरे ही लिये सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मोंको

करनेवाला है, मेरे परायण है, मेरा भक्त है, आसक्तिरहित है और सम्पूर्ण भूतप्राणियोंमें वैरभावसे रहित है, वह अनन्यभक्ति-युक्त पुरुष मुझको ही प्राप्त होता है।'

जो मनुष्य भगवान्‌के कथनानुसार केवल भगवान्‌के ही लिये सब कुछ भगवान्‌का समझता हुआ यज्ञ, दान, तप आदि सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मोंको करता है, भगवान्‌को ही परम आश्रय और परम गति मानकर भगवान्‌की प्राप्तिके लिये तत्पर रहता है तथा भगवान्‌के नाम, गुण, प्रभाव और रहस्यके श्रवण, कीर्तन, पठन-पाठन, मनन और ध्यानका प्रेमसहित निष्कामभाव-से अभ्यास करता है, वह स्वार्थ, ममता और आसक्तिसे रहित तथा सम्पूर्ण प्राणियोंमें वैरभावसे शून्य अनन्यभक्तिवाला पुरुष भगवान्‌को प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार भगवान्‌की अनन्य भक्तिका अभ्यास करना चाहिये। यदि ऊपर बतलायी हुई बातें न हो सकें तो भगवान्‌की निम्नलिखित आज्ञाका पालन करनेसे भी भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है। भगवान् कहते हैं—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥
(गीता ९। ३४)

'मुझमें मनवाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करनेवाला हो, मुझको प्रणाम कर। इस प्रकार आत्माको मुझमें नियुक्त करके मेरे परायण होकर तू मुझको ही प्राप्त होगा।'

अभिप्राय यह है कि केवल उन सच्चिदानन्दघन परमेश्वरमें ही अनन्यप्रेमपूर्वक नित्य-निरन्तर अचलरूपसे मनको लगावे और उनके नाम, गुण और प्रभावके श्रवण, कीर्तन, मनन और

पठन-पाठनद्वारा श्रद्धा-प्रेमसहित निष्कामभावसे निरन्तर उन परमेश्वरको ही भजे तथा मन, वाणी और शरीरके द्वारा सर्वस्व उनके अर्पण करके अतिशय श्रद्धा, भक्ति और प्रेमसे विह्वलतापूर्वक उनका पूजन करे और उन सर्वशक्तिमान्, सम्पूर्ण विभूति, बल, ऐश्वर्य, माधुर्य, गम्भीरता, उदारता, वत्सलता और सुहृदता आदि अनन्त गुणोंसे सम्पन्न सबके आश्रय उन वासुदेवको विनयभावपूर्वक भक्तिसहित साष्टाङ्ग दण्डवत्-प्रणाम करे। इस प्रकार करनेसे भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है।

यदि यह भी न हो सके, तो केवल ईश्वरके नामका जप और उनके स्वरूपका ध्यान निष्काम प्रेमभावसे निरन्तर करनेसे भी परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है। यदि और कुछ भी न बन पड़े तो भगवान्‌के अनन्य चिन्तनसे भी भगवान्‌की प्राप्ति सुगमता-से हो सकती है। भगवान्‌ने कहा भी है—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(गीता ८। १४)

'हे अर्जुन ! जो पुरुष मुझमें अनन्यचित्त होकर सदा ही निरन्तर मुझ पुरुषोत्तमको स्मरण करता है, उस नित्य-निरन्तर मुझमें युक्त हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ, अर्थात् उसे सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ।' आपने लिखा था कि हमारे योग्य सेवा लिखनी चाहिये सो ठीक है। हर समय भगवान्‌को याद रखते हुए उसकी आज्ञाके अनुसार उसीके लिये काम करनेका अभ्यास करना चाहिये। और पहले आपने लिखा था कि विवाहका काम भगवान्‌को याद रखते हुए होना चाहिये, भगवान् सर्व-

शक्तिमान् हैं, वे सब कुछ कर सकते हैं—सो ठीक है। केवल विवाहका ही काम नहीं, सभी काम उसको याद रखते हुए ही करने चाहिये। भगवान्की दयासे सब कुछ हो सकता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। केवल भगवान्पर विश्वास होना चाहिये, क्योंकि इसमें श्रद्धाकी प्रधानता है।

आपने लिखा कि 'सब कुछ भगवान्का ही काम है, श्रीभगवान् ही करा रहे हैं—ऐसी बुद्धि हो जाय' सो ठीक है। इसके लिये श्रीभगवान्की शरण होना चाहिये। शरण होनेपर ऐसा हो सकता है। इसके लिये उनसे प्रार्थना करनी चाहिये और श्रीभगवान्पर विश्वास करके साधनकी चेष्टा रखनी चाहिये।

गीताके १५ वें अध्यायके १५ वें श्लोककी* बात लिखी, सो ठीक है। इसमें श्रद्धा होनी चाहिये; फिर सारी बात स्वतः ही ठीक हो सकती है। श्लोकमें लिखी हुई बात एकदम ठीक है। हृदय पवित्र हो और श्रद्धालु पुरुषका सङ्ग किया जाय तो भगवान्में श्रद्धा हो सकती है।

आपने अपने लिये तथा अपने पिताजीके लिये उपयोगी बातें लिखनेको लिखा सो ठीक है; हर समय परमेश्वरके नामकी

---

* सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्॥

'मैं ही सब प्राणियोंके हृदयमें अन्तर्यामीरूपसे स्थित हूँ तथा मुझसे ही स्मृति, ज्ञान और अपोहन होता है (संशय, विपर्यय आदि वितर्क-जालके दूर होनेका नाम 'अपोहन' है।) और सब वेदोंके द्वारा मैं ही जाननेके योग्य हूँ तथा वेदान्तका कर्ता और वेदोंको जाननेवाला भी मैं ही हूँ।'

स्मृति तथा उनके स्वरूपका ध्यान रखना चाहिये। इस प्रकार ध्यान रखते हुए ही काम करना चाहिये । आपके लिये सबसे उत्तम यही बात है एवं आपके पिताजीको भी शरीरसे काम, मनसे परमेश्वरके स्वरूपका ध्यान और जिह्वासे भगवान्‌के नाम-का जप करना उचित है।

आलस्य, प्रमाद और भोगोंको पापके समान समझकर त्याग देना चाहिये। तथा त्रुटियोंके लिये पासमें रहनेवाले पुरुषों-से बार-बार पूछना चाहिये और उन लोगोंके द्वारा बतलायी हुई भूलोंको सुधारनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

प्रभुकी शरण लेनेपर अकर्मण्यता मिटकर मनुष्यका उद्धार होता है। उत्साहपूर्वक परमेश्वरकी आज्ञाका पालन और परमेश्वरके स्वरूपके चिन्तन करनेका नाम ही प्रभुकी शरण लेना है।

---

[८१]

आपका पत्र मिला। ××××। अलग बैठनेके समय कामों-का ही चिन्तन होता लिखा सो काम करते समय मुख्यवृत्तिसे परमेश्वरके स्वरूपका ध्यान और गौणी वृत्तिसे सांसारिक काम करना चाहिये, ऐसा करनेसे मन परमेश्वरमें लग सकता है तथा ईश्वरके चिन्तनमें त्रुटि ही असली हानि है, ऐसा समझकर निरन्तर चिन्तनका प्रयत्न करना चाहिये।

आपने लिखा कि 'मेरी त्रुटियाँ ध्यानमें आवें सो लिखनी चाहिये', सो ठीक है। साधनके सम्बन्धमें तो यह त्रुटि प्रत्यक्ष ही है, जो कि हर समय प्रभुका चिन्तन नहीं होता।

आपने अपने लिये उपयोगी बातें लिखनेको लिखा सो ठीक है । गीताके १६ वें अध्यायके १, २, ३ श्लोकमें बतलाये हुए गुणोंको धारण करना चाहिये । भगवान् अर्जुनसे कहते हैं–

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥

'भयका सर्वथा अभाव, अन्तःकरणकी पूर्ण निर्मलता, तत्त्वज्ञानके लिये ध्यानयोगमें निरन्तर दृढ़ स्थिति और सात्त्विक दान, इन्द्रियोंका दमन, भगवान्, देवता और गुरुजनोंकी पूजा तथा अग्निहोत्र आदि उत्तम कर्मोंका आचरण एवं वेद-शास्त्रोंका पठन-पाठन तथा भगवान्के नाम और गुणोंका कीर्तन, स्वधर्मपालनके लिये कष्टसहन और शरीर तथा इन्द्रियोंके सहित अन्तःकरणकी सरलता, मन, वाणी और शरीरसे किसी प्रकार भी किसीको कष्ट न देना, यथार्थ और प्रिय भाषण, अपना अपकार करनेवालेपर भी क्रोधका न होना, कर्मोंमें कर्तापनके अभिमानका त्याग, अन्तःकरणकी उपरति अर्थात् चित्तकी चञ्चलताका अभाव, किसीकी भी निन्दादि न करना, सब भूतप्राणियोंमें हेतुरहित दया, इन्द्रियोंका विषयोंके साथ संयोग होनेपर भी उनमें आसक्तिका न होना, कोमलता, लोक और शास्त्रसे विरुद्ध आचरणमें लज्जा और व्यर्थ चेष्टाओंका अभाव, तेज, क्षमा, धैर्य, भीतर-बाहरकी शुद्धि एवं किसीमें भी शत्रु

भावका न होना और अपनेमें पूज्यताके अभिमानका अभाव—ये सब हे अर्जुन! दैवी सम्पदाको लेकर उत्पन्न हुए पुरुषके लक्षण हैं।'

इस प्रकार भगवान्‌के द्वारा सोलहवें अध्यायमें बतलाये हुए दैवी सम्पदाके लक्षणोंको धारण करना चाहिये तथा आगे चौथे श्लोकसे २१ वें श्लोकतक बतलाये हुए अवगुणोंका त्याग करना चाहिये। अभिप्राय यह कि उत्तम गुण और उत्तम आचरणोंका सेवन तथा बुरे गुण और बुरे आचरणोंका त्याग करना चाहिये। इस प्रकार करनेसे सब अवगुणोंका नाश हो सकता है। इतना न बन पड़े तो परमेश्वरके नामका जप और उसके आज्ञानुसार काम करना चाहिये।

आपके प्रेमके अनुसार मैं तो समयपर पत्र भी नहीं दे पाता हूँ, फिर भी आप मेरी भूलकी ओर ध्यान नहीं देते।

[८२]

हर समय श्रीभगवान्‌को याद रखना चाहिये। काम करते समय हरेक काममें स्वार्थ और आसक्तिका त्याग करके 'सर्वत्र श्रीभगवान् हैं'—ऐसा निश्चय रखते हुए उनके प्रेममें मग्न होकर उन्हींका काम समझकर करना तथा जो कुछ हो, उसमें उनका हाथ समझकर आनन्द मानना चाहिये। सारा संसार श्रीभगवान्‌की फुलवाड़ी है, भगवान् इस संसाररूपी बगीचेके चतुर माली हैं; कभी किसी पौधेको उखाड़ते हैं और किसीको लगाते हैं। जो इस बातके रहस्यको नहीं जानते, वे ही दुखी-सुखी होते

हैं । हमें इस रहस्यको समझकर हर समय उनकी लीलाको देखते हुए आनन्द मानना चाहिये ।

मनुष्यको अपनी समझके अनुसार सावधानीसे प्रयत्न करना चाहिये । फिर उसका जो परिणाम हो, उसीमें आनन्द मानना चाहिये । कोई भी काम हो, धीरजके साथ करना चाहिये, जल्दी नहीं करनी चाहिये ।

[८३]

भजन-ध्यानका साधन तेज करनेके लिये विशेष चेष्टा करनी चाहिये । मनुष्यका जन्म दुर्लभ है । समयका कोई भरोसा है नहीं । प्राण जानेके पूर्व ही अपना उद्धार कर लेनेका प्रयत्न करना ही बुद्धिमत्ता है, नहीं तो पीछे पछतानेसे कोई लाभ नहीं होगा । काम, भोग, पाप, आलस्य और प्रमादको मृत्युके समान समझकर इनका सर्वथा त्याग करनेकी चेष्टा करनी चाहिये ।

भगवान्‌से यही प्रार्थना करे कि 'हे प्रभो ! हमारा मन दूसरी जगह कहीं न जाय । शरीर कहीं भी रहे, कोई बात नहीं, पर आपका भजन-ध्यान निरन्तर होता रहे । फिर नया पाप तो होगा नहीं । पुराने पाप हैं, उन्हें चाहे जैसे भुगतावें, कोई चिन्ता नहीं । हम तो यही चाहते हैं कि आपका ध्यान बना रहे । ध्यान बना रहेगा तो पापोंका स्वतः ही नाश हो जायगा । पाप-नाशके लिये प्रार्थनाकी क्या आवश्यकता है ? केवल एक ही बातकी प्रार्थना है—चाहे सो हो, आपके भजन-ध्यानमें कभी विघ्न न हो ।' जो प्रभुके सिवा और कुछ नहीं चाहता, वही

एकनिष्ठ भक्त है। भक्त प्रह्लादने यही कहा कि किसी प्रकारकी इच्छा हो तो उसका नाश हो जाय। प्रभुसे कुछ माँगना नहीं चाहिये। माँगे तो एक ही बात कि 'हम जीवन-मरण, सांसारिक सुख-दुःख कुछ भी नहीं चाहते। पापोंके नाशके लिये भी चिन्ता नहीं। बस, हर समय आपका चिन्तन होता रहे, प्रभुके चिन्तनके सिवा हमें और कुछ नहीं चाहिये।'



[८४]

भजन, ध्यान, सेवा, सत्सङ्गकी साधारण चेष्टा आप करते ही हैं; परंतु अब तो साधारणसे काम नहीं चलेगा। सावधान होना चाहिये और विशेषरूपसे चेष्टा करनी चाहिये। समय बीता जा रहा है। एक भगवान्‌के विना और कोई भी आपका नहीं है। शरीर, धन और जो कुछ भी आप अपनी वस्तु समझते हैं, उन सबको हृदयसे आप श्रीभगवान्‌के अर्पण कर दें तो बहुत शीघ्र काम बन सकता है। आप इन वस्तुओंको रख भी लेंगे तो भी बादमें इनमेंसे कोई भी वस्तु आपके काम नहीं आवेगी। यह समझना चाहिये कि वस्तुतः यह सब स्वप्नवत् है, मायामात्र है। इस प्रकार समझकर अब इन सबका एकदम त्याग कर देना चाहिये।



[८५]

भजन-ध्यानका साधन तेज होनेके लिये सत्सङ्गकी विशेष चेष्टा रखनी चाहिये। सत्सङ्ग न मिले, उस हालतमें सद्ग्रन्थोंका अभ्यास भी सत्सङ्गके ही समान है।

गरीब तथा दुखी मनुष्योंपर दया रखनी चाहिये। दुखियोंकी और बड़ोंकी सेवाके समान कुछ भी धर्म नहीं है। इसलिये इनकी सेवा करनी चाहिये। समयको अमूल्य समझकर उसे अमूल्य काममें ही लगाना चाहिये। श्रीभगवान्‌के भजन-ध्यानके समान संसारमें कुछ भी नहीं है—इसलिये हर समय निष्काम प्रेमभावसे निरन्तर भजन-ध्यानमें समय बिताना चाहिये। श्रीभगवान्‌को हर समय याद करनेसे भगवान्‌की प्राप्ति बहुत सुगम है। भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥
(८। १४)

'हे अर्जुन! जो पुरुष मुझमें अनन्यचित्त होकर सदा ही निरन्तर मुझ पुरुषोत्तमको स्मरण करता है, उस नित्य-निरन्तर मुझमें युक्त हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ, अर्थात् उसे सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ।'

कोई कैसा भी पापी क्यों न हो, श्रीभगवान्‌को निष्काम-भावसे निरन्तर भजनेवाला मनुष्य शीघ्र ही परम शान्तिको प्राप्त हो जाता है, मुक्त हो जाता है। भगवान् स्वयं कहते हैं—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥
(गीता ९। ३०-३१

'यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्यभावसे मेरा भक्त होकर मुझको भजता है तो वह साधु ही मानने योग्य है, क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है। अर्थात् उसने भलीभाँति निश्चय कर लिया है कि परमेश्वरके भजनके समान अन्य कुछ भी नहीं है। वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहनेवाली परम-शान्तिको प्राप्त होता है। हे अर्जुन! तू निश्चयपूर्वक सत्य जान कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता।'

इसलिये और कुछ भी न हो तो श्रीभगवान्‌को हर समय याद तो रखना चाहिये। हर समय याद रखनेवालेको ही अन्त-कालमें भगवान् याद आ सकते हैं और अन्तकालमें श्रीभगवान्‌को याद करते हुए जो जाता है, वह निश्चय ही भगवान्‌को प्राप्त हो जाता है। गीतामें भगवान्‌ने कहा है—

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥
यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥

(८।५-६)

'जो पुरुष अन्तकालमें भी मुझको ही स्मरण करता हुआ शरीरको त्यागकर जाता है, वह मेरे साक्षात् स्वरूपको प्राप्त होता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! यह मनुष्य अन्तकालमें जिस-जिस भी भावको स्मरण करता हुआ शरीरका त्याग करता है, उस-उसको ही प्राप्त होता है, क्योंकि वह सदा उसी भावसे भावित रहा है।'



[८६]

प्रेमपूर्वक हरिस्मरण ! आपका पत्र मिला। समाचार मालूम हुए। आपसके व्यवहारमें प्रणाम लिखनेकी आवश्यकता नहीं है। भगवान्‌के नामसे बढ़कर शिष्टाचारका रक्षक कौन हो सकता है।

व्यक्तिगत सांसारिक विषयमें आपको जो परामर्श करना हो, वह यदि किसी समय प्रत्यक्षमें मिलकर कर लिया जाय तो थोड़े समयमें अधिक निर्णय हो सकता है और विषय भी पूरा समझमें आ सकता है। पर ऐसा अवसर मिलनेमें स्वतन्त्रता न होनेके कारण किसी समय तत्काल कोई बात पूछनी हो तो कोई आपत्ति नहीं है, अपने सुविधानुसार आप पत्रद्वारा पूछ सकते हैं। उत्तरमें विलम्ब होना मेरे लिये स्वाभाविक-सा हो गया है, अतः इसके लिये मैं लाचार हूँ।

आपके प्रश्नोंका उत्तर क्रमशः इस प्रकार है—

(१) शास्त्रविधिका निर्णय करनेके विषयमें पूछा सो शास्त्रकी सभी बातोंमें विरोधाभास नहीं है; बहुत-सी बातोंका तो स्पष्ट निर्णय अपने-आप हो ही जाता है। यदि किसी अंशमें विरोधकी बात दीखे तो वहाँ गीताको ही प्रधान मानकर 'शास्त्र' शब्दकी व्याख्या कर लेनी चाहिये। जिस कर्ममें गीतासे विरोध न आता हो, उसीको शास्त्रसम्मत समझ लेना चाहिये। शास्त्र-विधिके त्यागके साथ-साथ एक विशेषण और भी दिया गया है अर्थात् जो शास्त्रविधिको छोड़कर इच्छानुसार बर्तता है, स्वेच्छाचारी हो जाता है, वह सिद्धि, सुख या परम गतिको नहीं पाता—ऐसा लिखा है (गीता १६। २३); किंतु जिन महापुरुषोंमें

अपनी श्रद्धा हो, जिनको वह हृदयसे शास्त्रज्ञ मानता हो, उनकी आज्ञाके अनुसार चलनेवाला स्वेच्छाचारी नहीं कहलाता; क्योंकि धर्मज्ञानके लिये यह भी शास्त्रविधि है, ऐसा करना शास्त्रविधिका त्याग नहीं है। इतिहास-पुराण आदिकी कथाओंमें जहाँ संशय हो, बात समझमें आवे ही नहीं, उस भागको छोड़ देना ही साधकके लिये उपयोगी है। ऐसी शङ्काओंका ठीक-ठीक उत्तर नहीं मिल सकता। किस समय कौन-सा कर्म किसके द्वारा किस उद्देश्यसे किया गया था, इसका किसको पता है ? फिर इसकी समालोचना साधारण मनुष्य कैसे कर सकते हैं। अतः साधकको इन विचारोंमें समय नहीं लगाना चाहिये।

(२) सन्ध्याके विषयमें पूछा सो यदि आपकी जातिमें यज्ञोपवीत लेनेका अधिकार हो और आपने भी यज्ञोपवीत ले रक्खा हो तो जो सन्ध्या आजकल प्रचलित है, ब्राह्मणादि वर्ण जिसे किया करते हैं, वही आप भी कर सकते हैं। सन्ध्योपासनका अर्थ है—सन्धिके समयकी उपासना। अतः जितना समय मिल सके, प्रतिदिन नियमपूर्वक भगवान्‌की उपासनामें लगाना चाहिये। भगवान्‌के नामका जप और स्वरूपका ध्यान ही सर्वश्रेष्ठ उपासना है। बैठते समय आचमन और प्राणायाम कर लेना और अन्तमें या बीचमें सूर्यको भगवान्‌की प्रत्यक्ष मूर्ति समझकर अर्घ्य दे देना चाहिये। इतना कार्य तो प्रत्येक मनुष्य कर सकता है। इसमें जाति-पाँतिका विचार नहीं है। एवं जिन्हें यज्ञोपवीतका अधिकार नहीं है, उनके आत्मसुधारके लिये यह उपासना प्रचलित वैदिक सन्ध्योपासनसे किसी प्रकार भी कम नहीं है।

(३) चौदह करोड़ जपकी बात आपने किस मन्त्रके विषयमें पूछी—यह मैं समझ नहीं सका। अतः स्पष्ट लिखना चाहिये। जपकी केवल संख्या पूर्ण कर देना ही प्रधान काम है, ऐसा नहीं समझना चाहिये। जपका प्रधान काम है—भगवान्‌की स्मृति करा देना। अतः भगवान्‌के स्वरूपको याद रखते हुए जो जप किया जाता है, वह संख्यामें कम होनेपर भी बहुत महत्त्व रखता है; चाहे वह किसी भी शास्त्रीय मन्त्रका जप क्यों न हो। शास्त्रोंमें अधिक-से-अधिक जितने जप आवश्यक बतलाये गये हैं, मेरी समझमें उतने जप करने नहीं पड़ते; प्रेमपूर्वक किये हुए थोड़े हीं जप बड़ी संख्याके फलकी पूर्ति कर दिया करते हैं। इसमें प्रेम ही मुख्य है। अतः भगवान् तीन वर्षोंमें ही मिलेंगे या ग्यारह वर्षोंमें—इसकी चिन्ता न रखकर शीघ्रातिशीघ्र भगवान्‌के दर्शन हों, ऐसा उपाय करते रहना चाहिये; फिर दर्शन देना, न देना—उनकी इच्छापर रहा।

(४) चित्रकूट आदिके विषयमें मेरा विशेष अनुभव नहीं है। अतः उसका मैं क्या उत्तर लिखूँ। मेरी समझमें तो दिन-रात चौबीसों घंटे उठते-बैठते, खाते-पीते और सोते-जागते तथा अन्य समस्त कार्य करते समय निरन्तर भगवान्‌को प्रेमपूर्वक स्मरण रखनेका अभ्यास करना चाहिये—यही सर्वोत्तम है।

(५) महाभारत-युद्ध इस उद्देश्यसे धर्मानुसार कर्तव्य हो जाता है कि नीच पुरुषोंके हाथोंमें शासन रहनेसे प्रजा धर्मसे च्युत होती जायगी, अतः उनके हाथमें शासन नहीं रहने देना चाहिये। अपना अपराध करनेवालेसे उसका बदला लेनेके

लिये युद्ध करना त्यागी धर्मात्मा पुरुषका कदापि कर्तव्य नहीं होता—यह ठीक है। पर प्रजाके सुखके लिये तो हो सकता है। भगवान्‌ने गीतामें यही उद्देश्य रखकर अर्जुनको फल और आसक्ति छोड़कर समभाव रखते हुए युद्ध करनेका उपदेश दिया है (२। ४७-४८)। राज्यप्राप्ति या स्वर्गप्राप्तिके लोभसे भी युद्ध करना महापुरुषोंके कर्तव्यमें नहीं आ सकता। आपने महाभारत-युद्धको क्षमा-विरोधी ठहरानेके लिये जो दलीलें दी हैं, वे उपर्युक्त उद्देश्य रखकर युद्ध करनेवालोंके लागू नहीं पड़तीं। अर्जुनको राज्यप्राप्तिसे सुख होनेकी तो स्वप्नमें भी आशा नहीं थी, यह उन्होंने पहले ही स्पष्ट कर दिया। फिर उन्हें राज्यके लिये युद्ध करनेका मार्ग भगवान् कैसे बतलाते ? भगवान्‌ने तो ऐसा मार्ग बतलाया है जिससे कि युद्ध करना भी भगवान्‌की ही पूजा सिद्ध होती है। अर्जुनको वास्तवमें न तो अभिमन्युकी मृत्युका शोक होना चाहिये और न राज्य मिलनेका हर्ष ही होना चाहिये। तभी उनका उद्देश्य सफल समझा जा सकता है। आपके लेखानुसार महाभारत-युद्धसे यह भाव निकालना कि 'दो भाइयोंमें हिस्सेके लिये झगड़ा हो तो अपना उचित अंश लेकर ही रहना चाहिये, अपना हिस्सा कभी नहीं छोड़ना चाहिये', युक्तिसङ्गत नहीं है; क्योंकि धर्मराज युधिष्ठिरने युद्धको टालनेके लिये बहुत कुछ त्याग स्वीकार किया है, फिर उचित अंश न छोड़नेकी बात कहाँ रह जाती है। हाँ, सबका मन एक-सा नहीं हो सकता, किसी-किसीके मनमें बदला लेनेकी भावना रही हो तो भी कुछ आश्चर्य नहीं; परंतु भगवान् तो उस महायुद्धसे जगत्‌का लाभ ही समझते थे, इसीलिये उन्होंने वैसा करवाया, बदला चुकानेके लिये नहीं।

(६) भगवान्‌की पूजा मेरी समझमें सभी मनुष्य प्रेम-पूर्वक कर सकते हैं। हाँ, यह हो सकता है कि जो मुख्य विधि शास्त्रोंमें द्विजोंके लिये नियत कर दी गयी हो या जिस प्रतिमा-विशेषका अधिकार केवल उन्हींको दिया गया हो, उसमें सबका अधिकार न हो। शम्बूककी तपस्यामें भी यही बात थी। भगवान्‌की भक्ति तो शबरी भी करती थी। यदि वही विधान होता तो उसको इतना आदर कैसे दिया जाता। अतः यह समझना चाहिये कि भक्तिमें सभीका अधिकार है, यह सभी शास्त्रोंसे सम्मत है।

(७) वैदिक मन्त्रोंको छोड़कर भगवान्‌के किसी भी नाम-मन्त्रका जप हर समय किया जा सकता है। मेरी समझमें इसके लिये कोई रुकावट नहीं है। गुरूपदिष्ट मन्त्र यदि शास्त्रविहित हो और किसी तरहकी अड़चन न हो तो बदलनेकी क्या आवश्यकता है?

(८) षोडश नामात्मक मन्त्रके साढ़े तीन करोड़ जपके लिये किसी नियमका बन्धन नहीं है। पर इसका निर्णय कौन कर सकता है कि अमुक व्यक्तिने इतना जप ठीक कर ही लिया है और उसको भगवत्प्राप्ति हुई है या नहीं। तथा यह भी कैसे कहा जाय कि उस विधानके अनुसार जीवन्मुक्ति मिलती है या विदेहमुक्ति। फिर केवल इन सब संख्या-पूर्तिकी बातोंपर ही निर्भर क्यों रहा जाय?

(९) प्रचलित सम्प्रदायोंमें दीक्षित होकर उनके नियमानुसार बाहरी चिह्नोंको धारण करना मेरी समझमें कोई महत्त्वकी बात नहीं है। ऐसा न करनेमें मैं कोई दोष

नहीं मानता । मेरी समझमें तो सदाचार और भावकी ही प्रधानता है ।

---

[८७]

आपका पत्र मिला । मुझे अभिवादन आदि शब्द न लिखकर राम-राम ही लिखना चाहिये । आपके प्रश्नोंका उत्तर नीचे लिखा जाता है—

(१) अपने प्रति बुरा वर्ताव करनेवालेके साथ बुरा वर्ताव करना यद्यपि पाप नहीं है, फिर भी सत्पुरुषोंको उत्तम वर्ताव ही करना चाहिये । शठके साथ शठताका वर्ताव करनेसे यदि लोकोपकार होता हो तो करनेमें आपत्ति भी नहीं है । पूर्वमें भी किसी महापुरुषने यदि किया है तो ऐसा ही समझकर किया है; परन्तु मेरी समझसे झूठ-कपटका आश्रय तो मनुष्यको कभी नहीं लेना चाहिये—मैं तो ऐसा मानता हूँ । महाराज श्रीकृष्णजीकी भी यह शिक्षा नहीं है कि झूठ-कपटका आश्रय लेना चाहिये और न उन्होंने ऐसा किया ही है । राजा युधिष्ठिरने धर्मका पालन किया, पालनमें कष्ट भी हुआ; परंतु उसका परिणाम उनके लिये अच्छा ही हुआ । अतः कष्टके भयसे धर्मपालनका त्याग नहीं करना चाहिये ।

संसार मायामय है, इसका आशय यह लेना चाहिये कि संसारके भोगोंको मायामय समझकर उनका त्याग करनेके लिये ऐसा कहा गया है, अधर्माचरण करनेके लिये नहीं ।

(२) युधिष्ठिर और हरिश्चन्द्रके समान धर्मका पालन यथाशक्ति अवश्य करना चाहिये और जो परिवारवाले स्वजन

साथ देना चाहें उनके द्वारा भी धर्मपालन करवाना चाहिये। उन्होंने ऐसा समझकर ही बर्ताव किया था, अतः वे प्रशंसनीय हैं। धार्मिकताका लोगोंपर प्रभाव अवश्य पड़ता है; क्योंकि अभीतक संसारमें नल-युधिष्ठिर आदिका प्रभाव प्रत्यक्ष है। पर सबपर ही उनका प्रभाव पड़े, यह कोई नियम नहीं। राजा युधिष्ठिरका अश्वत्थामापर प्रभाव नहीं पड़ा तो इससे क्या हुआ। धर्मपालनका परिणाम तो अच्छा ही हुआ। भले आदमियोंको परिणामकी ओर ही देखना चाहिये। चतुर-चालाक और मिथ्या वाचाल होकर लोकप्रिय होना उत्तम नहीं है, वास्तवमें लोगोंका सच्चा हित करके ही लोकप्रिय होना चाहिये। युधिष्ठिर धर्मान्ध नहीं थे, बल्कि धर्म-पथ-प्रदर्शक महापुरुष थे। उनका अनुकरण तो दूर रहा, उनका नाम लेने और उनकी कीर्तिका स्मरण करनेसे भी आत्मामें पवित्रता आती है। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीमें धर्मयुक्त कुशलता थी, धर्मविरुद्ध नहीं।

(३) आपने लिखा कि पापियोंको तो सुख मिलता दीखता है और धर्मात्माओंको कष्ट ही मिलता है, सो न तो सारे पापियोंको ही प्रत्यक्ष सुख है और न सारे धर्मात्माओंको प्रत्यक्ष दुःख है। आपने रावणादिका उदाहरण दिया कि वे दुष्ट थे और उन्होंने सदा सुख पाया तो मान्धाता और जनकादि धर्मात्मा थे और वे सुख ही पाते रहे। मरना, रोगी होना, दुःख पाना आदि पापी और धर्मात्माओंमें समान देखनेमें आता है सो ठीक ही है। सब लोग विशेषतया पूर्वजन्मोंके कर्मानुसार ही फल भोगते हैं और कुछ इस जन्मके कर्म भी सम्मिलित हो जाते हैं। पाप करनेवाले सभी सुख भोगते हैं, यह भी युक्तियुक्त नहीं है।

क्योंकि सबमें यह बात देखनेमें नहीं आती। बहुत-से पापी दुःख पाते हुए भी प्रत्यक्ष देखे जाते हैं।

(४) गुरु गोविन्दसिंहके पुत्र, कवि गंग, महात्मा ईसा आदि धर्मके लिये मर गये और भगवान्‌ने उनकी रक्षा नहीं की, सो सभीको प्रत्यक्षमें मरनेसे बचा देनेका कोई नियम नहीं है और केवल प्रत्यक्ष बचा देनेमात्रका नाम ही रक्षा नहीं है। जो धर्मपालन करते हैं, उनको धर्मपालनका श्रेष्ठ फल अवश्य ही मिलता है। यहाँ नहीं तो मरनेके बाद मिल जाता है।

(५) आपने लिखा कि भगवान्‌के नामजप करनेवाले अच्छे-अच्छे महात्माओंकी अन्तरात्मा भी अशुद्ध रहती है सो या तो वे वास्तवमें अच्छे महात्मा ही नहीं होंगे या आपका अनुमान ही ठीक नहीं होगा। नामजप करनेवाले अशुद्ध अन्तरात्मा नहीं हो सकते। जर्मनी, जापान, अमेरिका, इंग्लैंडवालोंने बिना नामजपके ही दूर-देशसे श्रवण, गमन, दर्शन आदिकी शक्तियाँ निकाल लीं—सो इसमें कौन-सी बड़ी बात है। मेघनाद आदिमें तो इससे भी बढ़कर विद्या थी; किंतु वे महात्मा नहीं समझे गये। इन शक्तियोंके प्रलोभनमें आकर धर्मकी दृष्टिसे उनका अनुकरण नहीं करना चाहिये। हाँ, राजनीतिक और भौतिक दृष्टिसे अनुकरण करनेमें कोई आपत्ति नहीं।

(६) जो जन्मसे ही कामादिमें आसक्त नहीं, उसे हम अज्ञानी कैसे कह सकते हैं। गीताका व्याख्यान देनेवाला भी काम-क्रोध आदि नारकीय प्रकृतिमें देखनेमें आता है; तो समझना चाहिये कि वास्तवमें वह गीताका व्याख्यान करनेका अधिकारी ही नहीं है। उसके व्याख्यानका असर ही क्या पड़ना है?

व्याख्यान देनेवालेको ही महापुरुष नहीं समझ लेना चाहिये। जो उसके अनुसार आचरण करता है, वास्तवमें वही महापुरुष है। आचरण करनेवालेका ही दूसरोंपर प्रभाव भी पड़ता है। सच्चे पुरुषोंके उपदेशका प्रभाव व्यर्थ नहीं जाता। यद्यपि प्रकृतिके अनुसार ही कर्म होते हैं; परंतु अच्छे पुरुषोंके सङ्गसे बुरी प्रकृति भी सुधर जाती है, अतः उनका उपदेश व्यर्थ नहीं होता।

(७) कोई पुरुष पहले साधारण पाठ-पूजा करता हुआ देखनेमें आता था, फिर कुछ दिनों बाद उच्च सिद्धान्तके अनुसार चलने लगा; किंतु अब उसकी रुचि बदल गयी और अब उसका देव, ईश्वर और परलोकमें विश्वास भी नहीं रहा तथा वह पापाचरण करता है। अब भी वह व्याख्यान देता हुआ स्वयं आचरण नहीं करता सो इसका कारण या तो वह पहलेसे ही बुरा था, लोगोंने उसे पहचाना ही नहीं या विषयोंके अधिक संसर्गसे अथवा नास्तिकोंके सङ्गसे उसकी ऐसी स्थिति हो गयी।

(८) भाई, भौजाई, पुत्र, स्त्री आदि कुटुम्बियोंके साथ इन्द्रियोंका संयम और स्वार्थका त्याग करके शान्तिपूर्वक नीति और कुशलतासे काम लेना चाहिये। शान्तिका भङ्ग एवं स्वार्थका आना ही खराबी पहुँचाता है।

(९) न्याययुक्त धन उपार्जन करके ही पिताके ऋणको उतारनेकी चेष्टा करनी चाहिये। ऋणदाताओंको विनयादि साधनोंद्वारा अवश्य सन्तोष कराना चाहिये, परंतु झूठ-कपट आदिसे नहीं; क्योंकि इसका परिणाम बुरा होता है और अन्तमें झूठका पर्दा खुलनेपर वे भी असन्तुष्ट ही होंगे।

(१०) गीताके अधिकारी अर्जुन ही थे, हमलोग नहीं; परंतु अधिकारी बननेके लिये भजन, ध्यान, सेवा, सत्सङ्ग और संयम करनेका प्रयत्न करना चाहिये । इस प्रकार प्रयास करने-पर हमलोग भी अधिकारी बन सकते हैं । साधन करते-करते चाहे कितने ही वर्ष बीत जायँ, परंतु साधनसे उकताना नहीं चाहिये; क्योंकि इसके सिवा और करना ही क्या है ? सत्सङ्गमें श्रद्धा और प्रेमकी कमीके कारण ही प्रायः नींद आती है। श्रद्धा-प्रेम बढ़नेके लिये भगवान्‌से गद्गद वाणीद्वारा सविनय प्रार्थना करनी चाहिये । हृदयकी सच्ची पुकार भगवान् सुनते हैं और मातासे भी बढ़कर भगवान् उसकी रक्षा करते हैं ।



[८८]

मुझको और भाई हनुमानको छोड़कर आप कहीं नहीं जाना चाहते, यह आपके प्रेमकी बात है; किंतु आपको अपने कुटुम्बवालोंकी सम्मतिसे रहना उत्तम है । कुटुम्बियोंको स्वार्थी समझकर उनकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये । × × × आपको पैसा एकत्र करनेकी इच्छा नहीं है लिखा सो यह सराहनीय बात है; पर अपनेमें विशेष योग्यता बढ़ाकर कुछ कमाकर पैदा करके कर्तव्यबुद्धिसे कुटुम्बवालोंकी भी सेवा करनी चाहिये ।

भगवान्‌में प्रेम होनेसे भजन-ध्यानमें चित्त लगता है और उनका प्रभाव जाननेसे ही उनमें प्रेम होता है तथा सत्सङ्ग और शास्त्रोंके मननसे ही भगवान्‌का प्रभाव जाना जाता है । अतएव सत्पुरुषोंका सङ्ग और शास्त्रोंका मनन करनेका प्रयत्न करना चाहिये ।

भजन करते हुए काम नहीं होता लिखा सो यह तो सबमें स्वाभाविक दोष है ही। इसलिये स्वभाव बदलना चाहिये यानी काम करते हुए निरन्तर भजनकी चेष्टा करनी चाहिये। विशेषरूपसे प्रयत्न करनेपर ही दायित्वपूर्ण काम करते हुए भी भजन-ध्यानका अभ्यास बढ़ सकता है। मनुष्य सर्वथा काम छोड़ भी तो नहीं सकता, क्योंकि शरीरनिर्वाहके लिये तो सबको काम करना ही पड़ता है।

आपने लिखा कि 'मुक्तिकी इच्छावालेके लिये काशीका वास और काशीमें मरना बहुत उत्तम है; किंतु मुझे मुक्तिकी इच्छा नहीं है, मुझे तो केवल भगवान्‌के दर्शनोंकी ही इच्छा है।' सो ठीक है। भगवान्‌के साक्षात् मिलनमें काशी कोई बाधक नहीं है, वह तो सहायक ही है। भगवान्‌की प्राप्ति होती है प्रेमसे और प्रेमकी वृद्धि होती है सत्सङ्गसे; सो सत्सङ्ग खोज करनेपर सभी जगह मिल सकता है, फिर काशीकी तो बात ही क्या है। आपको प्रातःकाल तथा सायंकाल डेढ़-डेढ़ घंटा समय मिल जाय तो कुछ दिन काशी रहकर देखना चाहिये। काशीका वास भी तो सब प्रकारसे उत्तम है।

प्रभुमें अनन्य श्रद्धा और प्रेम होनेपर नित्य-निरन्तर भजन हो सकता है। नित्य-निरन्तर भजन होनेपर सारे दुःखों, पापों एवं क्लेशोंका सदाके लिये नाश होकर चिरस्थायी परमानन्द और परम शान्तिकी प्राप्ति हो जाती है; फिर उसको गर्भवास, मृत्युकाल तथा नरकके दुःख और नाना प्रकारकी क्लेशमय योनियोंमें जन्म होनेका भय कैसे हो सकता है, बल्कि वह तो सम्पूर्ण गुणोंका घर बन जाता है एवं निर्भयताको प्राप्त हो जाता है। इसलिये प्रभुमें अनन्य प्रेम और श्रद्धा होनेके लिये

भजन, ध्यान तथा सत्पुरुषोंका सङ्ग करके प्रभुका प्रभाव जानना चाहिये।

[८९]

आपको......ने सब रास्ता बतलाया और उससे लाभ हुआ, सो आनन्दकी बात है। पिता, माता, चाचा, भाई आदि आपके कार्यसे प्रसन्न न हों तो उनसे शान्तिपूर्वक प्रार्थना करनी चाहिये तथा उनकी सेवाका विशेष ध्यान रखना चाहिये। माता-पिताको कड़ी बात कहना, जबाब देना और उपदेश देना छोड़ दिया सो बहुत ही अच्छा किया। माता-पिताको उपदेश देना पुत्रका अधिकार ही नहीं है। यदि उनके हितकी कोई बात ध्यानमें आवे तो उनसे शान्तिपूर्वक प्रार्थना की जा सकती है, उसे मानना-न-मानना उनकी इच्छापर निर्भर है। अनावश्यक जबान न खोलना ही अच्छा है। दूसरोंको उपदेश देनेके विषयमें पण्डितजीने बहुत ठीक कहा, अनधिकार उपदेश कुछ काम नहीं देता।

दूसरोंके सामने ऐसी बातें भी नहीं करनी चाहिये, जिससे आप भजन करनेवाले या ईश्वरके भक्त सिद्ध होते हों। अपने-को हर हालतमें सबका दास समझना चाहिये; क्योंकि ईश्वर सबमें विराजमान हैं। अपनी बड़ाई करनेसे भजनमें बहुत बाधा पड़ती है और मनुष्यका पतन हो जाता है। ईश्वर इससे प्रसन्न नहीं होते। दूसरे लोग हमें पागल या मूर्ख कहें तो इसमें हमारी कोई हानि नहीं, बल्कि अच्छा ही है; परंतु दूसरे लोग हमें ईश्वरका भक्त या महात्मा कहें—ऐसा अवसर उन्हें नहीं देना चाहिये।

ईश्वर न तो जोरसे नाम लेनेके लिये मने करते हैं, न झूठ बोलनेका समर्थन करते हैं, न गीता पढ़ना बुरा बताते हैं, न सादा भोजन और संयमके लिये ही मने करते हैं और न पूजा-पाठ छोड़नेके लिये ही कहते हैं। यह सब तो आपके मन-की कल्पना है। इनको ईश्वरकी प्रेरणा समझना मनका धोखा है। ईश्वरकी प्रेरणा तो वही है, जो गीताके अनुकूल हो।

पिताजीकी आज्ञा न मिलनेके कारण यदि आप स्वर्गाश्रम सत्सङ्गमें न जा सकें तो कोई बात नहीं है; उनको सेवाके द्वारा प्रसन्न करनेसे तथा प्रार्थना करते रहनेसे कभी आज्ञा मिल भी सकती है। माता-पिताकी बात सुननी पड़ती है, यह बुरा नहीं है। यह तो एक प्रकारका तप है, इससे मनमें दुःख नहीं होना चाहिये। कोई अच्छी नौकरी मिल जाय और उसके बाद भी माता-पिता अप्रसन्न होकर कोई मनको प्रिय न लगनेवाली बात कहें तो उससे बुरा नहीं मानना चाहिये, बल्कि उनके मनमें दुःख न हो, इसके लिये सेवा आदि करते रहना चाहिये।

(१) आपने शयन और भोजन करनेके स्थानमें श्रीकृष्ण-का चित्र टाँग रक्खा है, यह बहुत उत्तम बात है। गीता और भागवतको पढ़नेमें मनको बलपूर्वक लगाना पड़ता है, इसका कारण यह हो सकता है कि उनको अभी आप ठीक समझते न हों। पर जब उनका भाव ठीक समझमें आने लगेगा, तब बहुत आनन्द आ सकता है और उनके पढ़नेमें मन भी लग सकता है। भजन-कीर्तनमें आनन्द आता है तथा भगवान् सामने खड़े हैं—ऐसी भावना होती है, यह बहुत ही अच्छा है। भगवान्‌को हर जगह देखनेका अभ्यास बहुत लाभदायक है।

(२) धूपमें बैठनेसे शरीरमें किसी प्रकारकी बीमारी पैदा

नहीं होती तो बैठना कोई बुरी बात नहीं है। परंतु उसके लिये माता-पिताके द्वारा पूछे जानेपर बहानेबाजी न करके सच्ची बात स्पष्ट बता देनी चाहिये और यदि वे इससे अप्रसन्न होते हों तो ऐसा करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है । माता-पिताकी आज्ञाके सामने यह बात कोई महत्त्व नहीं रखती । इस विषयमें उनकी प्रसन्नता-के अनुसार मान लेना चाहिये ।

(३) एकादशीका व्रत करनेके लिये पहले दशमीको एक बार भोजन करनेके विषयमें पूछा सो यदि शरीरमें किसी प्रकारसे विशेष हानि न होती हो तो ऐसा करना उत्तम है। परंतु इसके लिये माता-पितासे हठ नहीं करना चाहिये, उनको प्रसन्न रखकर ही ऐसा करना चाहिये । एकादशी और द्वादशी—दोनों दिन व्रत रखना उत्तम है; परंतु बिना अभ्यासके दोनों दिन व्रत रखनेसे शरीरमें कमजोरी आ सकती है और माता-पिता, घरवाले भी अप्रसन्न हो सकते हैं । अतः दोनोंमेंसे जो दिन अच्छा लगे, उसी दिन व्रत कर लेना ठीक है। प्यास रोकना उचित नहीं, आवश्यकतानुसार जल पी लेना उचित है। सिर भिगोना भी ठीक नहीं है, शरीरसे जो सुखपूर्वक हो सके, ऐसा ही व्रत करना चाहिये ।

(४) गायत्री-जपमें पहली बात है—उसके अर्थका ध्यान रखना । यदि यह न हो सके तो भगवान्‌के स्वरूपको ही उसका अर्थ समझकर उसका चिन्तन करना चाहिये; यह भी न हो तो फिर अक्षरोंका ध्यान भी अच्छा ही है ।

(५) श्वास-श्वासपर जप करनेका अभ्यास बहुत अच्छा है; इसे अवश्य करना चाहिये ।

(६) कभी-कभी जो पूजा-पाठ छोड़नेकी भावना मनमें आ जाती है, यह पूर्वकृत पापोंके संस्कारोंसे आती है। अन्तःकरण शुद्ध हो जानेके बाद ऐसी भावना नहीं आ सकती। संसारी लोगोंसे मिलना-जुलना कम होता है, यह अच्छी बात है।

(७) खटाई, तेल, मिर्च खाना छोड़ देना तो बहुत अच्छा है; परंतु लोगोंमें इसकी प्रसिद्धि करना आवश्यक नहीं, इससे बड़ाई होती है। ऐसी बातोंको गुप्त रखनेका ध्यान रखना चाहिये। रोटी, तरकारी आवश्यकतानुसार एक बार ले लेना और भोजन करते समय ईश्वरके नामका जप और रूपका ध्यान रखना भी बहुत उत्तम है पर यह भी गुप्त होना चाहिये; दूसरोंको सुनाकर या समझाकर करना ठीक नहीं। खाते समय मौन रखना बहुत अच्छा है।

पत्र बड़ा होनेसे उत्तर देनेमें देर हो जाती है, यदि थोड़े शब्दोंमें लिखा करें तो और भी अच्छा है।

खाने-पीनेमें माता-पिताके प्रसन्नतानुसार कर लेना उचित है। हाँ, वे यदि लहसुन, प्याज आदि कोई तामसी वस्तु खानेको कहें तो शान्तिपूर्वक प्रार्थना करके उनसे क्षमा माँग लेनी चाहिये कि 'मुझे यह पदार्थ अच्छे नहीं लगते, मेरी रुचि नहीं है, अतः क्षमा करें।' भगवान्‌की भक्ति--नाम-जप, ध्यान तथा गीता-पाठ आदिके लिये मने करते हों तो इन सबको गुप्तरूपसे करना चाहिये। दूसरोंसे गुप्त रखकर किया हुआ साधन अधिक लाभदायक होता है और इससे माता-पिता भी प्रसन्न रह सकते हैं। संसार छोड़नेकी भावना दिलमें उठे तो उसे नहीं मानना चाहिये, उसमें कोई लाभ नहीं है।

भगवान्‌से प्रेम होनेके लिये आप जिस प्रकार प्रार्थना करते हैं, वह ठीक है।

[९०]

……का शरीर शान्त हो गया सो बहुत चिन्ताकी बात है; किंतु मृत्युके आगे किसीका जोर नहीं चलता। पूजनीया माताजी आदिको, बाल-बच्चोंको तथा स्त्रीको धीरज दिलाना चाहिये। आप समझदार हैं। बीती हुई बात वापस नहीं आती। उनके साथ अपना इतना ही संयोग था; अब चिन्ता-शोक करके अपने चित्तको चाहे जितना कष्ट दें, उससे कुछ भी फल नहीं होगा—इस प्रकार समझकर सबको धीरज बँधाना चाहिये। वस्तुतः संसारमें सुख है ही नहीं, यह तो मायाजाल है। अतः भगवान्‌की शरण लेनी चाहिये और भगवान्‌का भजन-ध्यान करना चाहिये। उसीसे शान्ति मिल सकती है। और कोई भी उपाय नहीं है। शास्त्रोंका अभ्यास करना चाहिये। समय बीता जा रहा है। समयका विचार करके हमलोगोंको शीघ्र सचेत हो जाना चाहिये ××× ।

---

[९१]

आपका पत्र मिला। आपने लिखा कि स्वाध्याय आदि चल रहे हैं और यहाँ पहाड़में चार महीने निकालनेका दिल हो रहा है, सो ठीक है।

चार बजे बाद उदासीनता होनेका क्या कारण है? परमात्माकी निरन्तर कृपा समझकर प्रसन्न होना चाहिये।

प्रसन्नता न भी हो, तो भी प्रसन्नताकी भावना करनी चाहिये। ऐसा करनेसे प्रसन्नता होनी सम्भव है।

एकान्तमें भय नहीं होना चाहिये। भयकी तो कोई वस्तु है ही नहीं। यदि प्रेतकी भावना होती हो तो प्रेतके स्थानमें परमात्माकी भावना करनी चाहिये। यदि कहें कि बिना देखी हुई वस्तुका चिन्तन कैसे हो तो जिस प्रकार प्रेतको बिना देखे ही उसका चिन्तन होता है, उसी प्रकार परमात्माका भी चिन्तन करना चाहिये। भगवान्को सर्वत्र समझना चाहिये। भगवान् तो सर्वत्र प्रसिद्ध हैं ही। प्रेतको न तो किसीने देखा ही है और न प्रेत किसीको मारता ही है। भगवान्की सर्वव्यापकताका प्रमाण तो शास्त्रोंमें अनेक जगह मिलता ही है और उनके भक्त प्रत्यक्ष बतलाते भी हैं।

मनके दमनके लिये एकान्त स्थानमें रहना तो उत्तम ही है। इसके लिये गीताके छठे अध्यायके १०वेंसे १४वें तकके श्लोकोंका अर्थ देखना चाहिये और तदनुसार ध्यानके लिये एकान्तमें बैठकर मनको एकाग्र करनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

तपस्वियोंका स्मरण बार-बार होता है सो अत्युत्तम है, परंतु भगवान्का चिन्तन उनसे भी बढ़कर है। अतः निरन्तर भगवच्चिन्तन करना चाहिये। जहाँ-जहाँ मन जाय, वहाँ-वहाँ भगवान्का ही स्मरण करें।

जपके सम्बन्धमें लिखा सो जिस प्रकार करनेसे आपके चित्तकी एकाग्रता अधिक हो, शान्ति और आनन्द अधिक मिलें, उसी प्रकार जप करना चाहिये ××××।

ध्यानके समय निद्रा और स्फुरणा अधिक आती है, अतएव निद्रा न आवे, इसके लिये आसनसे बैठना चाहिये (समं कायशिरोग्रीवम्—गीता ६ । १३) तथा हल्का और सात्त्विक आहार करना चाहिये । आहार कम मात्रामें करना उचित है । पापमय वासनाओंका हमारा बहुत समयका अभ्यास है–इसलिये पहले उन वासनाओंको शास्त्रचिन्तन आदिके अभ्यास-से सात्त्विक बनाना चाहिये । राजसी-तामसी वासनाओंको हटानेसे सात्त्विक वासनाएँ उदय होंगी; फिर सात्त्विक वासनाओंका भी त्याग हो सकता है । श्वासद्वारा जप करनेसे भी वासनाका नाश हो सकता है । निराहार व्रतसे उष्णता बढ़ती हो तो दूध या फल ले लेना उचित है । इसपर भी यदि निद्रा-आलस्य अधिक आते हों तो खड़े होकर भजन करना चाहिये ।

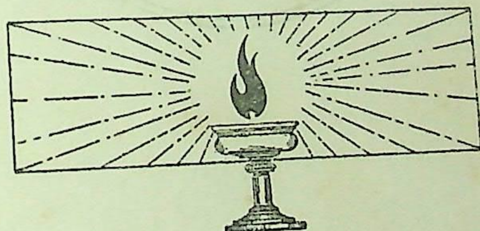
एकान्तमें बैठकर स्वाध्याय करना सर्वोत्तम है; परंतु माता-बहिन आदिको सुनानेमें कोई संकोच नहीं करना चाहिये । घरवालोंके समुदायमें सुनानेसे किसी प्रकारके भी अनिष्टकी सम्भावना नहीं है और संकोच भी नहीं करना चाहिये ।

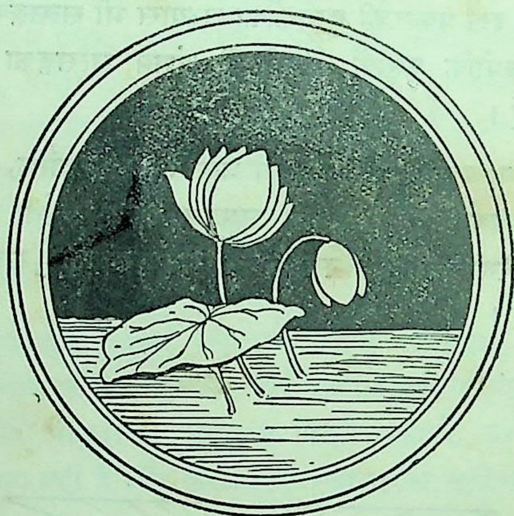
भगवान्में प्रेम होनेके लिये चेष्टा करनी चाहिये, फिर चित्तमें वैराग्य और आनन्द तो स्वतः ही होने लगेगा । इस विषयमें सहायताके लिये लिखा सो सहायता करनेवाले तो एक परमेश्वर ही हैं । मैं तो साधारण मनुष्य हूँ । मैं क्या सहायता कर सकता हूँ ।

क्षमाके लिये लिखा सो ऐसा नहीं लिखना चाहिये । आपका कोई अपराध ही नहीं, फिर क्षमाकी क्या बात है ।

भजन-ध्यानका साधन जोरसे करना चाहिये । और बालकोंको शास्त्रानुकूल बनानेकी चेष्टा करनी चाहिये । मेरे लक्ष्यको तो आप जानते ही हैं । आधुनिक सुधारवादसे मेरा सिद्धान्त अत्यन्त भिन्न है । समयको अमूल्य समझकर भजन-ध्यान और सेवा-सत्सङ्गमें बिताना चाहिये । सत्सङ्ग न मिले तब पुस्तकोंमें भगवान्‌के प्रेम, प्रभाव, तत्त्व, रहस्यकी कथा पढ़नी चाहिये । इस प्रकारकी पुस्तकोंका अभ्यास भी सत्सङ्गके समान ही है; क्योंकि पुस्तकें भी किसी अंशमें सत्सङ्गका काम दे सकती हैं ।

मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा, ऐश, आराम, स्वाद, शौक, आलस्य और प्रमादको पापके समान समझकर उन्हें सर्वथा छोड़नेकी चेष्टा करनी चाहिये, क्योंकि ये सब साक्षात् मृत्युके ही समान हैं ।







पता—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर